कालिदास की कृतियों में वर्णित विभिन्न राज्य एवं राजा

महाकवि कालिदास ने अपनी कृतियों में अपने देश के तत्कालीन जिस स्वरूप का चित्रण अपनी बहुमुखी प्रतिभा से किया है, वह विविध प्रकार के शासकीय विभागों–उपविभागों में विभक्त था। इनकी संज्ञा सामान्यतया देश (प्रदेश या प्रान्त) संघ, राज्य, कबीले (आदिम या पिछड़ी जातियों के अस्थायी प्रदेश, पुर (नगर) जनपद, ग्राम आदि निर्धारित की जा सकती है।

महाकवि कालिदास ने अपने वर्ण्यविषय के साथ जिन राजनैतिक प्रदेशों (प्रान्तों संघ–राज्यों तथा कबीलों का उल्लेख अपनी कृतियों में किया है, उनका यहाँ प्रत्यभिज्ञान के साथ सामान्य परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है–

कोशल :–

'दिलीप–रघु' आदि पूर्ववर्ती 'रघुवंशी राजाओं का मूल संघ रूप शासन प्रदेश कोशल ही था। महाकवि कालिदास ने रघु को 'कोशलेश्वर' अपर अभिधान प्रयुक्त किया है।[1]

---

1 रघुवंश महाकाव्यम्–4/70.

सम्पूर्ण कोशल का विस्तार क्षेत्र प्राचीनकाल में अधिक व्यापक था, जो सामान्तया उत्तर में हिमालय श्रेणियों (वर्तमान नेपाल देश), पूर्व में विदेह तथा मगध (वर्तमान विहार सीमा) तक, दक्षिण में विन्ध्य श्रृंखलाओं तक (विदर्भ आदि की सीमा) तथा पश्चिम में यमुना नदी शूरसेन राज्य की सीमा तक ब्रह्मावर्त (कुरूक्षेत्र) तक विस्तृत प्रतीत होता है। यद्यपि स्थूलरुप में इसे अवध कहा जाता था, किन्तु यह कोशल की अपेक्षा अधिक संकुचित शासन प्रदेश था, जिसमें अयोध्या के आस–पास के जिलों का क्षेत्र (फैजाबाद, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, गोंडा, बस्ती आदि जिले) सम्मिलित था। प्रतीत होता है कि रघु के पश्चात् स्पष्टतः कोशल एक संघ राज्य हो गया था। वह आन्तरिक रूप से दो शासन क्षेत्रों में विभक्त होकर प्रशासित होता था– उत्तर कोशल तथा दक्षिण कोशल। यह रूप होने पर भी प्रभुता उत्तर कोशल की ही थी, जिसकी राजधानी अयोध्या या साकेत से ही प्रशासन होता था। यही कारण है कि कोशल के राजा ने अपनी राज्यकन्या का विवाह उत्तरकोशल (संगठित कोशल राज्य) के शक्ति सम्पन्न स्वामी दशरथ के साथ किया।[2]

(1) **उत्तर कोशल–**

महाकवि ने स्पष्ट रूप से उत्तरकोशल का उल्लेख[3] कई स्थलों में किया है। श्री रामचन्द्र के पश्चात् स्पष्टरूप से कोशल संघराज्य में महान परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। उत्तरकोशल की प्रधान राजधानी अयोध्या का स्थान शरावती (श्रावस्ती) और कुशावती

---

2 रघुवंश – 9/17.

3 रघुवंश–6/71, 9/16, 13/92

नामक राजधानियाँ ग्रहण कर लेती हैं जो क्रमशः लव–कुश के शासन प्रदेशों (उत्तरकोशल और दक्षिणी कोशल) की नवीन राजधानियों के रूप में सामने आती है।[4]

मार्ककालिन्स के अनुसार–उत्तरकोशल, कोशल (संघराज्य) राज्य के उत्तरी शासन के गृह–प्रदेश से भिन्न नहीं है।[5] डी0सी0 सरकार भी इसे कोशल से भिन्न लव का शासन प्रदेश मानते हैं जिसकी राजधानी श्रावस्ती (वर्तमान साहेत–माहेत) थी[6]

वस्तुतः उत्तरकोशल कोशल (दक्षिण कोशल) के उत्तर का शासन प्रदेश था। इसका विस्तार यद्यपि सीमित प्रतीत होता है, किन्तु प्रभुत्व रघु– दिग्विजय की दृष्टि में रखने पर इतिहास के गुप्तवंशीय समुद्रगुप्त के शासन से भी अधिक परिलक्षित होता है।[7]

वैसे सामान्यतया इसमें अवधखण्ड ग्रहण किया जा सकता है कि महाकवि ने जिस उत्तरकोशल का वर्णन किया है, जिसका विस्तार और अधिक होना चाहिए। इस तथ्य को दृष्टि में रखकर उत्तर कोशल को वर्तमान उत्तरपूर्व उत्तर प्रदेश के क्षेत्र से भिन्न नहीं कह सकते। इसका विस्तार उत्तर में राप्ती और गण्डकी नदियों से लेकर दक्षिण में गंगा नदी तक निर्धारित किया जा सकता है।

(2) **कोशल (दक्षिण कोशल)** –

---

4 रघुवंश०–15/97.

5 कालिन्समार्क–ज्योग्रॉफिकलडॉटा ऑफ दि रघुवंश ऐण्ड दशकुमार चरितम् पेज–18, 1907

6 सरकार डी0सी0–स्टडीज इन दि ज्याग्राफी ऑफ ऐंन्शियंट ऐण्ड मेडिवल इंडिया पृ०–212, देहली 1960

7 द्रष्टव्य समुद्र गुप्त का प्रयाग स्तम्भ शिलालेख।

महाकवि द्वारा सम्पूर्ण संघराज्य कोशल के ही उत्तरी शासन राज्य उत्तरकोशल के उल्लेख[8] से यह सिद्ध होता है कि दूसरा अवशेष प्रधान राज्य भी इसी मुख्य नाम से विश्रुत रहा होगा। राज्य का अधिक विस्तार होने से इसका नाम 'कोशल' अथवा दक्षिण कोशल सम्भव है। श्रीराम के पश्चात् कुश ने इसी का शासन पद भार ग्रहण किया। इस कोशल या दक्षिण कोशल की राजधानी कुशावती (कुशस्थली) थी।[9]

रघुवंश 16/25 से यह सिद्ध होता है कि यही राज्य कोशल मुख्य सत्ता सम्पन्न भाग था, क्योंकि कुश ने ही नवीन राजधानी कुशावती से आकर अपनी पूर्व परम्परागत राजधानी अयोध्या को पुनः बसाया जबकि 'लव' भी शरावती में ही केवल उत्तर कोशल के शासक रहे।

अयोध्या के ससैन्य अभियान में कुश तथा उनकी सेना को विन्ध्याचल की श्रेणियों तथा नर्मदा नदी भी पार करनी पड़ी थी, और कुश की सेना को मार्ग भी खोजना पड़ा था।[10] गह्वरों में गूँजती नर्मदा की प्रवाह ध्वनि को सुनते हुए पुलिन्दों की उपहारसामग्री को देखते हुए कुश ने ससैन्य विन्ध्य पर्वत पार किया था। महाकवि के उपर्युक्त वर्णनानुसार यही सिद्ध होता है कि कोशल या दक्षिण कोशल का विस्तार उत्तर में गंगा से लेकर सुदूर दक्षिण (विन्ध्याचल के दक्षिण) तक था। महाकवि कालिदास के परवर्ती नाटककार हर्ष ने भी कोशल (दक्षिण कोशल) राज्य में स्थित विन्ध्यश्रृंखलाओं का स्पष्ट संकेत किया है[11]

---

8 रघुवंशम्–6/71, 9/1, 13/32

9 रघुवंशम्–15/87

10 रघुवंशम्– 15/31 तथा 15/22

11 रत्नावलि–नाटिका, 4/5

क्योंकि कोशल के अधिपति उदयन ने सेनापति रूमण्वान् से युद्ध विन्ध्यदुर्ग से निकल कर किया था, जिसमें वह मारा गया।

पार्जीटर महोदय के मतानुसार– 'नर्मदा' के दक्षिण में जिस दक्षिणी कोशल का अस्तित्व है, उसको प्रधानतया 'मध्य प्रदेश' के 'छत्तीसगढ़' जिले से भिन्न नहीं कहा जा सकता है।[12] उनके अनुसार यह कोशल के ही अन्तर्गत था इसका पूर्वभाग मगध राज्य से संलग्न था।

जनरल कनिंघम के अनुसार प्राचीन कोशल (दक्षिण कोशल) से वर्तमान बरार या गोंडवाना प्रदेश ही समझना चाहिए[13] पार्जिटर महोदय ने केवल छिन्दबाड़ा जिले में दक्षिण कोशल को सीमित कर उसे अत्यन्त संकुचित स्वरूप दे दिया है। कनिंघम का दृष्टिकोण अवश्य ही ग्राह्य है। उनके आधार पर दक्षिण कोशल को इतिहास के महाकोशल से भिन्न नहीं होना चाहिए।

विदेह–(मिथिला)–

महाकवि ने रघुवंश में विदेह[14] या मिथिला राज्य का उल्लेख किया है, जिसका नाम उसके शासक 'जनक' उपनाम (विदेह) से ही विख्यात हो गया। राज्य के ही नाम से इसकी राजधानी भी मिथिला या विदेह (जनक) पुरी कहलाती थी। महाकवि ने रामायण के आधार पर उसी रूप में इसे ग्रहण किया है।

---

12 पार्जिटर; ऐन्शियंट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडिशन, पृ०, 278

13 ऐन्शियंट ज्यॉग्राफी ऑफ इण्डिया (कनिंघम) एडिटेड बाई एस0एन0 मजूमदार कलकत्ता, पेज–1124

14 रघुवंश–11/32, डॉ0 कृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्भा वाराणसी 2011

विदेह राज्य का विस्तार वर्तमान दरभंगा (बिहार) के जिले में अधिक नहीं प्रतीत होता है। डॉ0 भगवतशरण उपाध्याय इसे गुप्त शासन कालीन तिरहुत अथवा तिरभुक्ति से भिन्न नहीं मानते है।[15] जहाँ 'मिथिला' नाम का आधुनिक समय मे भी स्थान है वस्तुतः यह दरभंगा जिले से भिन्न नहीं है। यह 'विदेह' राज्य 'मगध' राज्य के उत्तर में वर्तमान नेपाल सीमा तक 'उत्तर कोशल' और 'अंग', 'बंग' राज्यों के मध्य में विस्तृत था।

मगध :–

'मगध' राज्य का उल्लेख प्राचीन साहित्य[16] तथा इतिहास में समुपलब्ध होता है, जिसके अनुसार इसका विस्तार गंगा के दक्षिण में प्रतीत होता है। महाकवि कालिदास ने मगधराज्य का उल्लेख 'इन्दुमति' स्वयंवर के प्रसंग में किया है[17] जिसके अनुसार प्रतीत होता है कि यह राज्य तत्कालीन सभी राज्यों से अधिक शक्तिशाली था। इसकी राजधानी 'पुष्पपुर' (इतिहास की पाटलिपुत्र वर्तमान पटना नगरी) थी।[18] महाराज 'दशरथ' की पत्नी 'सुमित्रा' 'मगध' की राजकन्या थी।[19] प्रतीत होता है कि महाकवि के समय में 'मगध' राज्य सर्वशक्ति सम्पन्न एवं सर्वाधिक प्रभावशाली था।[20]

---

15 'उपाध्याय' डॉ० भगवतशरण–इण्डिया इन कालिदास, पृ०–67, इलाहाबाद 2005

16 वाल्मी0 रामायण, किष्किन्धा० 40/22, तथा महाभारत, सभापर्व अ0 24

17 रघु0–6/21 डॉ0 कृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्भा वाराणसी 2011

18 रघु0–6/24

19 रघु0–9/17

20 रघु0–6/21

'जनरल कनिंघम' प्राचीन मगध को प्रधानतया विहार के 'पटना' और 'गया' जिले से अभिन्न स्वीकार करते हैं।[21] डॉ० डी0सी0 सरकार इस राज्य को 'बनारस' और 'मुंगेर' जिले के मध्य विस्तृत मानते हैं[22] जो वर्तमान 'दक्षिणी विहार' से भिन्न नहीं है, जिसके अन्तर्गत 'पटना' तथा 'गया' जिले ही मिलकर प्राचीन मगध का रूप देते है।

वस्तुतः प्राचीन मगध का विस्तार गंगा के दक्षिण में प्रतीत होता है। इसके पूर्व में अंग और बंग राज्य, उत्तर में विदेह (मिथिला तथा वैशाली) पश्चिम में कोशल तथा काशी राज्य दक्षिण में उत्कल राज्यों की सीमाएँ थी। शोण नदी इस राज्य से होकर प्रवाहित होती है। जो इसकी राजधानी पुष्पपुर (पाटलिपुत्र वर्तमान पटना के पास) गंगा में गिरती थी, अतः 'पटना' और 'गया' को प्रधान रूप से 'मगध' के समरूप माना जा सकता है। आज भी पटना जिले के लोग जिस लोकभाषा में 'मगध' कहते हैं। जो मगध का ही अपभ्रंशरूप है। पाटलिपुत्र के अतिरिक्त राजगृह भी मगध की राजधानी रही है।

अंग :–

अंग इस देश का बहुत प्राचीन तथा प्रसिद्ध राज्य रहा है। रामायण के लोमपाद तथा महाभारत के कर्ण का शासन प्रदेश अंग ही था जिसकी राजधानी चम्पा (चम्पारन) प्रतीत होती है।

---

21 दि ऐन्शिएंट ज्यॉग्राफी ऑफ इण्डिया (कनिंघम) एडिटेड वाइ एस0एन0 मजूमदार 1184, कलकत्ता, पृ०–518

22 स्टडीज इन दि ज्यॉग्राफी ऑफ ऐन्शियंट ऐण्ड मेडिवल इंडिया, पृ०–99, दिल्ली– 1960

महाकवि कालिदास ने अंग राज्य का उल्लेख इन्दुमती स्वयंवर में किया है,[23] जिसके अनुसार मगध राज के साथ अंग राज्य के अधिपति भी स्वयंवर में पधारे थे तथा वे दोनों पड़ोसी (मित्र) राजा होने के कारण पास–पास बैठे भी थे। यही कारण है कि इन्दुमति को मगध पति के पश्चात् अंग नरेश ही मिले थे। छोटा राज्य होने पर भी मगध की अपेक्षा यह कम प्रभावशाली नहीं था।

बौद्ध साहित्य में अंग की स्थिति भागलपुर तथा मुंगेर के आस–पास के प्रदेश से व्यक्त होती है, तथा इस राज्य की भूमि तत्कालीन (600 ई0पू0 के लगभग) भारत के 16 राजनैतिक विभागों में से एक थी।[24]

अंग राज्य मगध और वंग के मध्य में विस्तृत था जिसमें गंगा के दक्षिण में भागलपुर तथा मुंगेर के आस–पास का क्षेत्र सम्मिलित किया जा सकता है। सम्भवतः सुह्य देश (वर्तमान दामोदर के दक्षिण पूर्व का क्षेत्र) इस राज्य की दक्षिणी सीमा थी।

सुह्य :–

रघु ने अपनी दिग्विजय में सर्वप्रथम 'सुह्य' राज्य को समूल नष्ट न करके उसे वैंतसी वृत्ति का आश्रय लेकर केवल झुका ही दिया[25] (अधीनता स्वीकार करवाई)। अतः प्रतीत होता है कि सुह्य की स्थिति वंग के पश्चिम में थी, किन्तु ऐसी वस्तुस्थिति है नहीं, क्योंकि रघु एकदम सर्वप्रथम समुद्र तट पर ससैन्य आ धमके थे।[26]

---

23 रघुवंश – 6/27 तथा 30

24 अंगुत्तर० 1.4 विनय० 11 पृ०–146 गोरिन्द सूत्र (दीर्घ निकाय) XIX 36

25 रघुवंश–4/35

26 रघुवंश–4/34

अतः सर्वप्रथम इसी सुह्य को झुकाना आवश्यक था नहीं तो पहले वंग को विजित करते। इस आधार पर सुह्य की स्थिति बंग (बंगाल)से दक्षिण–पश्चिम ही ज्ञात होती है, किन्तु रघुवंश के टीकाकार सुमति विजय और बल्लभदेव ने सुह्य को भ्रमवश 'ब्रह्म देश' समझ लिया है जो अनुचित दृष्टिकोण से युक्त है। ब्रह्म बंग से भी बहुत आगे है।

बंग :–

सुह्य–विजय के प्रश्चात महाकवि कालिदास ने रघु–दिग्विजय प्रसंग में वंग राज्य का उल्लेख किया है, जिसके अनुसार ज्ञात होता है कि बंग का विस्तार गंगा की निचली घाटी अर्थात डेल्टा के पूर्व प्रदेश में बहती उसकी विविध शाखा–स्रोतों के मध्य ब्रह्मपुत्र की डेल्टाई धारा तक था।[27]

महाकवि के पूर्वोत्तर साहित्य[28] में भी बंग का उल्लेख प्राप्त है जिसमें इसे पूर्व राज्यों से पृथक नहीं कर सकते। माधव चम्पू में स्पष्टतया इसका विस्तार पद्मा और ब्रह्मपुत्र नदियों के प्रवाह प्रदेश में है। अतः वर्तमान पूर्वी पाकिस्तान के मेमनसिंह ढाका आदि जिलों का भाग भी प्राचीन बंग में सम्मिलित किया जा सकता है।

उत्कल :–

सामान्यतया 'उत्कल' 'कलिंग' संघराज्य के रूप में ग्रहण किया जाना चाहिए, क्योंकि प्राचीन साहित्य में इनका पृथक्–पृथक् उल्लेख नहीं है और 'कलिंग' के उत्तरी भाग के रूप में उत्कल को वर्णित किया गया है। महाभारत के समय में भी यह कलिंग के

---

27 रघुवंश–4/36

28 वाल्मीकि रामायण, किष्किंधा काण्ड, 40/22, 41/11 आदिस्थल तथा काव्य मीमांसाः (पूर्वी जनपद) पृ0–226, सं०– केदारनाथ शर्मा सारस्वत।

अन्तर्गत ही था, जिसकी उत्तरी सीमा वैतरणी नदी बनाती थी।[29] कतिपय परवर्ती पुराणों[30] में इन दोनों संघ राज्यों का पृथक्–पृथक् ही उल्लेख प्राप्त है जिसका महाकवि ने भी अनुकरण किया है।[31]

महाकवि कालिदास के अनुसार उत्कल की उत्तरी सीमा 'कपिशा' (वर्तमान कसाई) नहीं थी, बंग विजय के पश्चात् जिस पर हाथियों का पुल बनाकर रघु ससैन्य इसे पारकर उत्कल राज्य में प्रविष्ट हुए थे।[32] जहाँ के शासकों ने उनकी अधीनता स्वीकार कर आगे विशाल कलिंग राज्य को जाने का मार्ग दिखाया था। अतः महाकवि के अनुसार इस राज्य की दक्षिणी सीमा कलिंग सिद्ध होती है।

डॉ0 भगवतशरण उपाध्याय– 'उत्कल को उत्कलिंग' का भ्रष्ट रूप मानकर इस राज्य को कलिंग का ही उत्तरी भाग स्वीकार करते हैं।[33] डॉ० डी0सी0 सरकार इसका विस्तार कसाई तथा वैतरणी नदियों के मध्य में मानते हैं।[34] वस्तुतः उत्कल वैसे कलिंग से पृथक राज्य नहीं था, किन्तु कवि ने यदि इसे कलिंग से भिन्न ही वर्णित किया है तो इसका विस्तार वर्तमान पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा तथा दक्षिणी–पूर्व विहार के सीमावर्ती भू–भाग से अभिन्न समझना चाहिए। इसमें मिदनापुर (दक्षिण भाग) जमशेदपुर तथा राँची (दक्षिणी पूर्व भाग) मयूर भंज, बालासोर जिले सम्मिलित किये जा सकते हैं।

---

29 महाभारत, वनपर्व अध्याय 114

30 ब्रह्मपुराण, 47/7

31 रघुवंश–4/38

32 रघुवंश–4/38

33 'उपाध्याय' डॉ0 भगवतशरण–इंडिया इन कालिदास पेज 51, 2005 इलाहाबाद

34 'सरकार' डी0सी0–स्टडीज इन ज्याँग्राफी ऑफ एन्शियंट ऐण्ड मेडिवल इंडिया पृ0–141

कलिंग :–

अन्य राज्यों की भाँति कलिंग इस देश का बहुत प्राचीन तथा प्रसिद्ध राज्य है, क्योंकि प्राचीन साहित्य[35] में इसका उल्लेख हुआ है। महाकवि कालिदास ने रघु–दिग्विजय प्रसंग में उत्कल के पश्चात् कलिंग का उल्लेख किया है।[36] जिसके अनुसार इसी राज्य में महेन्द्र पर्वत की स्थिति थी।[37] इस राज्य की सीमा पूर्व सागर थी जो समुद्र तटीय ताली[38] नारियल, पान सुपारी[39] आदि के वृक्षों से विशेष रमणीय प्रतीत होती थी। सागर तट के इसी प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण तथा व्यापारिक दृष्टिकोण से इसकी राजधानी (सम्भवतः दन्तपुर या राजापुर) विशेष रूप से राजभवन, तट के रमणीय वातावरण में निर्मित थे, जहाँ से समुद्री लहरों का सुन्दर दृश्य देखा जा सकता है, तथा तरंग–गर्जन–ध्वनी भी सुनी जा सकती थी। स्वयंवर के समय सुनन्दा ने इन्दुमती को इसी रमणीयता की ओर आकर्षित किया था।[40]

कामरूप :–

कामरूप का उल्लेख महाकवि कालिदास ने इन्दुमती स्वयंवर के पश्चात् एवं रघु–दिग्विजय के प्रसंग में किया है,[41] जिसके अनुसार कामरूप के शासक का विदर्भ से

---

35 वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धा 41/11, महाभारत, वन पर्व अध्याय 14 तथा शान्ति पर्व, अध्याय–4

36 रघुवंश–4/34, 44 तथा 6/53

37 रघुवंश–4/39, 6/54

38 रघुवंशी–6/57

39 रघुवंश–4/44

40 रघुवंश–6/56 विहराम्बुराशेस्तीरेषु ताली बनभर्मरेषु।

41 रघुवंश–7/17, 4/83 तथा 4/84

रक्त सम्बन्ध प्रतीत होता है, जो स्वयंवर में कन्यापक्ष के सम्बन्धी रूप में कुण्डिनपुर आये थे। वर रूप में राजकुमार 'अज' का स्वागत उन्होंने ही किया था। रघु–दिग्विजय में यहाँ के शासक ने रघु की अधीनता स्वीकार करके रत्न–पुष्पादि सामग्री को उपहार रूप में समर्पित किया था। कामरूप प्राचीन भारत का प्रसिद्ध उत्तर–पूर्वी सीमान्त राज्य है, जिसका उल्लेख प्राचीन साहित्य[42] में हुआ है, जिसके आधार पर इसकी राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर ही निर्धारित की जा सकती है। महाभारत इसके लिए 'चीन' शब्द प्रयुक्त करता है। जहाँ का राजा भगदत्त था।[43] 'कौटिल्य' ने भी इसके लिए चीन शब्द प्रयुक्त किया है तथा यहाँ के सुवर्ण–कुण्डय नामक ग्राम का भी उल्लेख किया है।[44] कुछ पुराण भी कामरूप की राजधानी प्राग्ज्योतिष को निर्धारित करते हैं[45] अर्थात कामरूप की प्राचीनता पुराणों में भी उल्लिखित मिलता है तो सम्भवतः कामरूप का अस्तित्व होगा।

मार्क कॉलिन्स के अनुसार– कामरूप और प्राग्ज्योतिष पृथक– पृथक राज्य हैं।[46] उन्होंने दोनों को एक राज्य मानने में अपना वैमत्व मूल पाठ को भ्रामक रूप में ग्रहण करने के कारण ही व्यक्त किया है। डी0सी0 सरकार[47] के मतानुसार कामरूप वर्तमान असम से अभिन्न है, जिसका मध्यवर्ती भाग प्राग्ज्योतिष (वर्तमान गौहाटी के आस–पास का क्षेत्र) इसी के अन्तर्गत था। ह्वेनसांग के अनुसार करतोया के पूर्व में विस्तृत था। डॉ0

---

42 वाल्मीकि रामायण : बालकाण्ड 30/6 तथा महाभारत सभापर्व–35/11

43 महाभारत सभापर्व–34/41

44 अर्थशास्त्र–अधिकरण 2, अध्याय 11

45 कालिकापुराण–अध्याय 38

46 ज्याग्रॉफिकल डाटा ऑफ रघुवंश ऐण्ड दशकुमार पृ0–15

47 सरकार, डी0सी0; स्टडीज इन दि ज्यॉग्राफी ऑफ ऐन्सिएंट ऐण्ड मेडिवल इण्डिया 1960 पेज 87, दिल्ली।

भगवतशरण उपाध्याय भी कामरूप को वर्तमान असम तथा प्राग्ज्योतिष (वर्तमान गोहाटी) से अभिन्न मानते है।[48]

रघु0 4/82–83 के मूलपाठ को मार्कंकालिन्स ने भ्रमात्मक रूप में ग्रहण करके प्राग्ज्योतिष और कामरूप को भिन्न राज्यों के रूप में स्वीकार किया है, किन्तु सामग्री के आधार पर प्राग्ज्योतिष (वर्तमान गोहाटी) कामरूप के ही अन्तर्गत था। इस राज्य का विस्तार पश्चिम में गोपालपांडा (ग्वालपाड़ा) जिले से पूर्व में तेजपुर तक, उत्तर में भूटान–नेफा सीमा से लेकर दक्षिण में खासी और जयन्तिया तक (प्राचीन कामरूप को) ग्रहण किया जा सकता है। ब्रह्मपुत्र इस राज्य के मध्य से प्रवाहित होती है। प्राग्ज्योतिष; जो इसकी राजधानी कही जा सकती है, वर्तमान गौहाटी से भिन्न नहीं है। महाकवि ने इस राज्य में कलागुरू[49] तथा हाथियों[50] के होने का तथ्य पूर्ण वर्णन किया है।

पाण्ड्य :–

प्रसिद्ध पाण्ड्य राज्य का उल्लेख महाकवि कालिदास ने रघु–दिग्विजय तथा इन्दुमती स्वयंवर प्रसंग में किया है[51] जिससे यह ज्ञात होता है कि 'पाण्ड्य' राज्य कावेरी के दक्षिण में लंका सागर तक विस्तृत था। साथ ही पश्चिम में मलयघाटी, ताम्रपर्णी, नदी भी इस राज्य के अन्तर्गत थी।[52] जो क्रमशः चन्दनवनों, कालीमिर्चों, इलायची तथा मोतियों की उपज के लिए विख्यात थी। दक्षिण राज्यों में पाण्ड्य ही अपने रत्नादि वैभव और शासन

---

48 उपाध्याय, भगवतशरण; इण्डिया इन कालिदास–पृ0 63, प्र0सं0 इलाहाबाद 2005

49 रघुवंशम् – 4/81

50 रघुवंशम्–4/83–84

51 रघुवंशम्–4/49 तथा 6/60

52 रघुवंशम्–4/46, 50

प्रभुत्व के लिए प्रसिद्ध था–[53] महाकवि ने इस राज्य को तत्कालीन राजधानी 'उरगपुर' का भी स्पष्ट संकेत किया है।[54]

डॉ० सी0वी0 वैद्य का विचार है कि करिकाल चोल तथा उसके पूर्व पाण्ड्य राज्य की राजधानी उरगपुर ही थी, जिसे उसने प्रथम शती ई० में पाण्ड्य पर प्रभुत्व जमाकर इस राजधानी के स्थान पर कावेरीपत्तनम को नई राजधानी बनाया। यह 'उरगपुर' उरैयुर से भिन्न नहीं है,[55] जो प्रथम शती ई0 पूर्व पाण्डय राजधानी थी। यह त्रिचनापल्ली जिले में है, किन्तु पाण्डय राज्य 300 ई० के आस–पास भी अपनी पुनर्गठित शक्ति 'मदुरा' राजधानी में केन्द्रित किये गये थे, जो 500 ई0 तक प्रभावशाली रहा।

इसी तत्कालीन पाण्ड्य के पुनरूत्थान का कवि ने बड़ा ही आकर्षक चित्र उपस्थित किया है। सम्भवतः मदुरा ही कवि का 'उरगपुर' है, क्योंकि इसका तमिल नाम 'अलवाय' अर्थात नाग या उरग है।[56] टीकाकार मल्लिनाथ इसे 'कान्यकुब्ज' तीरवर्ती 'भागपुरस्य' मानते है। हेमाद्रि ने भी उरगपुर को 'नागपुरस्य 'नाथम' समझा है,[57] जो भ्रमपूर्ण है, क्योंकि मद्रास से लगभग 160 मील दक्षिण में 'नागपट्टम भी स्थित है, जो प्राचीन इतिहास में या काव्य में अपना स्थान नहीं रखता।

---

53 रघुवंशम्–6/63

54 रघुवंशम्–6/59

55 वैद्य, सी0वी0; दि पाण्ड्याज ऐण्ड द डेट ऑफ कालिदास, दि एनाल्स ऑफ भण्डारकर, खण्ड–2, पेज–63, 681

56 के0एस0सांकर–दि अनाल्स ऑफ भण्डारकर इन्सटीट्यूट भाग–2, पेज–189–91

57 रघुवंशम्–6/59, दृष्टव्य, टीका हेमाद्रि तथा मल्लिनाथ टीका

पाण्ड्य राज्य की राजधानी चाहे (प्रथम शती ई0 की) उरगपुर (उरैयुर) जो त्रिचनापल्ली जिले में है या मदुरा माने उससे पाण्ड्य राज्य की सीमा कावेरी नदी पश्चिमी मलयगिरि तथा उसकी उपत्यका, केरल, राज्य, पूर्व तथा दक्षिण में पूर्व सागर (बंगाल की खाड़ी) और दक्षिण महोदधि (हिन्द महासागर) सीमा रूप में निर्धारित की जा सकती है।

अपरान्त और केरल :–

अपरान्त :– पाण्ड्य राज्य पर रघु अपना प्रभुत्व जमा कर मलय, दर्दुर श्रेणियों पर विश्राम करने के पश्चात् वे ससैन्य सह्य – श्रृंखला पारकर अपरान्त के राज्यों को जीतने के लिए बढ़े।[58] यह अपरान्त सम्पूर्ण सह्य और पश्चिमी सागर (अरब सागर) के मध्य की समानान्तर लगभग 40 मील से 57 मील चौड़ी तटीय पट्टी है। महाकवि ने पौराणिक आख्यान के आधार पर अपरान्त के उद्भव का संकेत किया है।[59]

रघुवंश के प्रमुख टीकाकारों में बल्लभ ने इसे 'कोकण'; सुमतिविजय ने सम्पूर्ण पश्चिमी (पट्टी के) राज्य तथा मल्लिनाथ ने भी यादव कोष के आधार पर पाश्चात्य तटीय भाग के सूर्पारक आदि राज्य स्वीकार किये हैं।[60] अर्थशास्त्र के टीकाकार भट्टस्वामी अपरान्त को 'कोंकण' से अभिन्न मानते हैं,[61] जबकि ब्रह्मपुराण (अध्याय–7) सुपरिक का भी वर्णन करता है।

केरल :–

---

58 रघुवंशम्–4 / 52–53

59 रघुवंश–4 / 53

60 रघुवंश–4 / 53, द्रष्टव्य–टीका,

61 अर्थशास्त्र, प्रकरण 2, कोषध्यक्ष–द्रष्टव्य भट्ट स्वामी टीका।

अन्य प्राचीन प्रसिद्ध राज्यों के भाँति केरल का भी उल्लेख प्राचीन साहित्य[62] में प्राप्त होता है। महाकवि ने रघु के सैन्य अभियान के कारण केरल राज्य की भयभीत स्त्रियों के आभूषण श्रृंगार को त्यागकर घरो से निकल भागने तथा उनके केशों में धूल लगने का उल्लेख किया है।[63] केरल कोंकण (अपरान्त) का दक्षिणी राज्य ही प्रतीत होता है, जिसके कोचीन, मालावार तथा ट्रावन्कोर भाग किये जा सकते हैं। प्राचीन केरल का विस्तार वर्तमान केरल की अपेक्षा अधिक उत्तर में गोकर्ण क्षेत्र तक प्रतीत होता है। क्योंकि मुरला (वर्तमान) काली नदी जो अब पश्चिमी मंसूर तट में बहती है, कभी केरल में बहने वाली नदी थी। महाकवि ने इसका उल्लेख केरल के ही प्रसंग में किया है।[64]

केरल की सीमा उत्तर में गोंकर्ण दक्षिण में कन्याकुमारी हिन्द महासागर, पूर्व में मलय, दर्दुर, (सह्य) श्रृंखलाएँ तथा पाण्ड्य राज्य और पश्चिम में पश्चिमी रत्नाकर (अरब सागर) है।

विदर्भ (कथकैशिक) :–

विदर्भ प्राचीन भारत का केन्द्रीय राज्य होने के कारण इतिहास में विशेष प्रसिद्ध रहा है तथा प्राचीन साहित्य[65] में इसका उल्लेख प्राप्त होता है। महाभारत[66] में विदर्भ नरेश भीष्मक के पुत्र रूक्मिन के उल्लेख के आधार पर इस राज्य की सीमा नर्मदा और अवन्ति के आस–पास प्रतीत होती है। महाकवि कालिदास के उल्लेखानुसार ज्ञात

---

62 वाल्मीकि रामायण : किष्किंधा काण्ड 4/13

63 रघुवंश–4/54

64 रघुवंश–4/55

65 वाल्मीकि रामायण किष्किन्धा काण्ड 41/11

66 महाभारत द्वितीय भाग–1115–1116

होता है कि इस राज्य का दूसरा नाम 'क्रथकैशिक' भी था। यह मौज वंश द्वारा शासित था।[67]यह राज्य अपने सुन्दर प्रशासन एवं सुख–समृद्धि से युक्त होने के अतिरिक्त रमणीयता के लिए विशेष रूप से विख्यात था।[68] इसी कारण महाकवि ने इन्दुमती को वैदर्भी के अतिरिक्त भोजकन्या[69] एवं भोज्या[70] तथा उसके भ्राता (जो विदर्भ के शासक थे) को वैदर्भ[71] कहने के साथ ही भोज[72] भोजपति[73] भोजप्रदीप[74] आदि अभिधानों से उल्लिखित किया है। इसकी तत्कालीन राजधानी कुण्डिन (पुर) या कुंदनिपुर (वर्तमान कुन्दनपुर) का भी महाकवि ने स्पष्ट संकेत किया है।[75]

मालविकाग्निमित्रम् (अंक 1 श्लोक 7 के बाद) में शुंगवंशी अग्निमित्र (जो विदिशा के आस–पास के क्षेत्र का शासक था) द्वारा विदर्भ को उसके शासन का 'स्वाभाविक' शत्रु कहा गया है। आगे उसकी सेना द्वारा विदर्भ पर आक्रमण कर उसे पराजित करने का भी उल्लेख किया गया है।[76] इसके साथ शुंग वंश शासन की संरक्षता में विदर्भ दो भागों में विभाजित कर, यज्ञसेन और माधवसेन का क्रमशः वरदा नदी के उत्तर और दक्षिण में प्रशासन कार्य संभालने का भी उल्लेख हुआ है।[77] अतः प्रतीत होता है कि तत्कालीन विदर्भ

---

67 रघुवंश–5/39, 61 7/29, 7/32.
68 रघुवंश–5/60
69 रघुवंश–7/35
70 रघुवंश–7/2, 13
71 रघुवंश–7/30
72 रघुवंश–5/39, 7/18
73 रघुवंश–7/20.
74 रघुवंश–7/29.
75 रघुवंश–7/33
76 मालविकाग्नित्रम्–5/1, 2, 3
77 मालविकाग्निमित्रम–5/13

(क्रथकैशिक) राज्य का विस्तार उत्तर दक्षिण को अधिक था। वरधा (वर्तमान, वर्धा, पेनगंगा की सहायक) नदी यहाँ की मुख्य नदी थी, जिसे मालविकाग्निमित्रम् में राज्य की आन्तरिक विभाजन सीमा रेखा माना गया है।

रघुवंश में इन्दुमती स्वयंवर से सम्बन्धित जिस विदर्भ (क्रथकैशिक) के भोजवंशी शासक का उल्लेख है, यह शिलालेखों अथवा ऐतिहासिक तथ्यों के अनुकूल नही है। इतिहास में वाकाटक वंशीय शासन तो अवश्य ही चौथी–पाँचवी शती के लगभग विदर्भ में प्रभुत्वशाली रहा, जो गुप्त साम्राज्य से भी स्वतन्त्र रहकर उससे रक्तसम्बन्ध कराने में सफल हुआ था। (चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वारा अपनी पुत्री प्रभावती का रूद्रसेन के साथ विवाह करना) महाकवि कालिदास ने सम्भवतः इसी राजनैतिक घटना से प्रभावित होकर देश की सांस्कृतिक एकता को रक्त सम्बन्ध द्वारा स्थायित्व देने के विचार से इसी केन्द्रिय राज्य 'इन्दुमती' स्वयंवर की मानसी सृष्टि कर देश को दूरवर्ती राज्यों के शासकों को एकत्रित चित्रित किया है।

इन वाकाटक के नरेशों ने कुल भू–प्रदेश दान या भेंट में भी दे दिया था।[78] जिसमें एक चरमानक (वर्तमान चम्मक इलिचपुर के पास पमील दक्षिण–पश्चिम में भी है, जो भोजकट राज्य में ही स्थित माना गया है।[79]

विष्णुपुराण[80] के अनुसार यह प्रदेश (भोजकट जिसमें चम्पक या चरमकन स्थित है) भीष्मक के विदर्भ राज्य से भिन्न नहीं प्रतीत होता है, जिसकी उस समय भी

---

78 दि चरमानक ऐण्ड स्वामी ग्रान्टस सी0आई0आई0 III NOS 55–56, दीया ग्रांट्स एडीटेड वाई कील हार्न, ई०पी० III न०35, पृ० 25.

79 'भोजकटराज्यै..... C.I.I. III No. 55Y 1/18

80 विष्णुपुराण, ट्रान्सलेटेड बाइ विल्सनः वाल्यूम 5, पेज–69–71

कुण्डिनपुर (कुन्दपुर राजधानी थी) यह तथ्य हरिवशं पुराण से[81] भी प्रमाणित होता है, जिसके आधार यह भोजकट प्रदेश विदर्भ का प्रमुख अंग है।

महाकवि द्वारा विदर्भ के शासक को भोजपति[82] भोजकुल प्रदीप (रघु0–7/29) कहना यह सिद्ध करता है कि तत्कालीन विदर्भ का भोजकट क्षेत्रीय भाग जो (इन भोजवंशीय शासक के प्रभाव में रहा होगा) इस राज्य का प्रधान केन्द्र समझा गया है। भोजवंशीय लोगों का अस्तित्व मौर्य–सम्राट अशोक के समय में भी विन्ध्य की पश्चिमी शृंखलाओं पर था। (तेरहवें शिलालेख के आधार पर) अतः सिद्ध होता है कि भोजकट (जो विदर्भ के वाकाटक शासन से अभिन्न था) विदर्भ के ही अन्तर्गत था तथा उसकी पश्चिमी सीमाएं नर्मदा नदी एवं अवन्ति निर्धारित की जा सकती है। मेघदूत (पूर्व मेघ–26–27) तथा मालविकाग्निमित्रम् (5/1,2) में वर्णित दशार्ण राज्य तथा उसकी विख्यात विदिशा राजधानी (शुंग साम्राज्य में अग्निमित्र का शासन केन्द्र) विदर्भ की उत्तरी सीमा से सम्बन्धित थे। विदर्भ के व्यापारी विदिशा (जो तत्कालीन व्यापारिक मार्गों के केन्द्र में पड़ने से वाणिज्य में बड़ी–चढ़ी थी) को व्यापार के लिए जाया करते थे। महाकवि ने विदिशा को जाने वाले विदर्भ के एक सार्थवाह समूह का विन्ध्य श्रेणियों के वन्य; मार्ग में डाकुओं द्वारा लूटे जाने का भी उल्लेख किया है।[83]

महाकवि कालिदास ने विदर्भ तथा क्रथकैशिक राज्य को पर्याथार्थ में ग्रहण किया है, जबकि उनके परवर्ती महाकवि राजशेखर (9वीं 10वीं शती) क्रथकैशिक को

---

81 हरिवंशपुराण, श्लोक पृ०–16, 1839 कलकत्ता

82 रघुवंश–7/20

83 मालविकाग्निमित्रम – 5/10

दक्षिणापथ के देशों में विदर्भ से भिन्न स्वीकार करते हैं।[84] महाभारत के एक प्रसंग के अनुसार[85] विदर्भदेशीय राजा ने इस राज्य को अपने उत्तराधिकारी कथ और कैशिक नाम के बालकों के मध्य विभाजित कर उत्तराधिकार रूप से सौंप दिया, तभी से विदर्भ का नाम क्रथकैशिक विख्यात हो गया। हो सकता है, राजशेखर के समय में यह भाग विदर्भ से पृथक माना जाता हो, किन्तु कालिदास के अनुसार इसे विदर्भ से अभिन्न ही समझना उचित प्रतीत होता है।

कतिपय विद्वानों (डी0सी0 सरकार तथा डे०)[86] ने विदर्भ को वर्तमान बरार तथा उसके आस–पास का प्रदेश माना है किन्तु यह विदर्भ का अत्यन्त संकुचित रूप प्रतीत होता है। इस प्रदेश को आगे (रामचन्द्र के पश्चात् कुश के शासन के अन्तर्गत) दक्षिण कोशल में यदि ग्रहणकर लिया जाय तो विदर्भ का अस्तित्व कितना रह जायेगा। अतः विदर्भ को नर्मदा नदी के दक्षिणी भाग से लेकर कृष्णा नदी तक विस्तृत मानना उपयुक्त है जिसके अन्तर्गत प्राचीन बरार, हैदराबाद, (आंध्र का अधिक भाग) सम्मिलित किया जा सकता है। जो अशंतः अब वर्तमान महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश के अन्तर्गत है। महाकवि के अनुसार इसकी तत्कालीन सीमाएं निम्नवत है–

पूर्व में दक्षिण कौशल, कलिंगराज्य।

पश्चिम में अनूप, अवन्ति राज्य।

उत्तर में दर्शाण (विदिशा राज्य) नर्मदा नदी तथा,

---

84 काव्यमीमांसा– पृ0–226, सं0–केदारनाथ शर्मा सारस्वत पटना–1954

85 महाभारत सभापर्व 212 अ0 में वर्णित

86 स्टडीज इन दि ज्याग्रॉफी ऑफ ऐन्शियंट ऐण्ड मेडिवल इण्डिया, पृ0–30, दिल्ली 1960, तथा एन0एल0 डे0, ज्याग्राफिल डिक्शनरी ऑफ एन्शियंट ऐण्ड मेडिवल इंडिया पृ0–103

दक्षिण में कृष्ण नदी, पाण्ड्य देश।

मालविकाग्निमित्रम् (5/13) के अनुसार यदि इसे वरदा नदी के उत्तर, दक्षिण दो भागों में विभाजित करें तो उत्तरी भाग की तत्कालीन प्रधान नगरी अमरावती तथा दक्षिण की प्रतिष्ठान (पैठन) प्रमुख रही होगी। सम्पूर्ण विदर्भ की राजधानी कुण्डिनपुर (वर्तमान कुन्दनपुर ही प्रतीत होती है)

अनूप :–

इन्दुमती स्वयंवर के ही प्रसंग में महाकवि ने अनूप राज्य का उल्लेख किया है।[87] जिसके अनुसार ज्ञात होता है कि यह राज्य पौराणिक परम्परा के अन्तर्गत क्षत्रिय हैहयवंशीय राजाओं द्वारा शासित था। इसके शासक का उल्लेख अवन्तिनाथ के साथ होने पर प्रतीत होता है कि अवन्ति और अनूप राज्य पड़ोसी (एक दूसरे की सीमा से सम्बन्धित) ही थे तथा उनमें पारस्परिक मैत्री थी।

महाकवि कालिदास के अनुसार इस राज्य की राजधानी माहिष्मती[88] (वर्तमान मध्य प्रदेश के निमाड़ जिले का मान्वताः जो इन्दौर से लगभग 40 मी0 दक्षिण की ओर स्थित है) थी जो रेवा नदी के दाहिने तट पर स्थित थी। यह राजनगरी अपनी नैसर्गिक रमणीयता के कारण विशेष विख्यात थी। रसिक महाकवि ने प्रासाद के झरोखो से वक्र प्रवाहित रेवा की कल्पना इस राजनगरी की करधनी से की है। सम्भवतः रेवा (नर्मदा) नदी अनूप राज्य की दक्षिणी प्राकृतिक सीमा निर्धारित करती थी।

---

87 रघुवंश–6/37

88 रघुवंश–6/63

श्री के0एम0 मुंशी के मतानुसार प्राचीन अनूप (कार्तवीर्य के समय) की सीमाएं[89] इस प्रकार की थी।

पूर्व में चर्मण्वती (चम्बल) नदी तथा अवन्ति राज्य। पश्चिम में (अरब) समुद्र उत्तर में आनंत (वर्तमान उत्तर गुजरात का भू–भाग) राज्य तथा दक्षिण में नर्मदा नदी।

माहिष्मती की स्थिति उनके अनुसार श्रृगुकच्छ (वर्तमान भड़ौच) से लगभग 10 या 12 मील थी। इन दोनों नगरों की व्यापारिक स्थिति तथा राजनैतिक दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण थी। डॉ० डी0सी0 सरकार महोदय भी इस राज्य को नर्मदा के तट तक विस्तृत मानते है।[90]

वस्तुतः अनूप राज्य प्राचीन भारत का छोटा, किन्तु परम प्रसिद्ध राज्य है। श्री के0एम0 मुन्शी ने जो इसकी उपर्युक्त सीमाएं निर्धारित की है, वे पर्याप्तरूप में तथ्यपूर्ण कही जा सकती है। पूर्व में जो चम्बल नदी की उन्होंने सीमा बताई है, वह इसकी ऊपरी घाटी से अभिन्न होनी चाहिए जो अवन्ति और अनूप के मध्य की प्राकृतिक सीमा प्रतीत होती है।

अवन्तिः–

अनूप राज्य के शासक के पूर्व इन्दुमती ने अवन्तिनाथ[91] का दर्शन किया था। प्रतिहारी की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि अवन्ति की तत्कालीन राजधानी उज्जयिनी थी,

---

89 भगबाउ परशुराम–कन्हैयालाल माणिकलाल, (प्रस्तावना) पृ0 12–13 दिल्ली।

90 स्टडीज इन दि ज्यॉग्राफी ऑफ एन्शियन्ट ऐण्ड मेडिवल इंडिया, पृ0–35 दिल्ली 1960

91 रघुवंश–6/36

क्योंकि कवि ने इस प्रसंग के अन्तर्गत महाकाल मंदिर[92] शिप्रा नदी के तरंगों से संस्पृष्ठ शीतल पवन युक्त तटीय उपवनों का उल्लेख किया है।[93] यह उत्पादन उज्जयिनी में ही सम्भव है।

इसके अतिरिक्त मेघदूत में भी महाकवि ने अवन्ति तथा उसकी वैभवमयी नगरी विशाला (उज्जयिनी का) उल्लेख किया है। (पूर्व मेघ 35) जहाँ शिप्रा नदी की ओर से आने वाले शीतल पवन[94] चण्डीश्वर धाम (महाकाल मंदिर)[95] गन्धवती आदि का भी सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है।

अवन्ति मालवा प्रदेश का प्राचीन नाम है जो लगभग 7वीं या 8वीं शती से परिवर्तित हुआ प्रतीत होता है। वैसे यह राज्य ऐतिहासिक शक्तिशाली साम्राज्य के शासन का प्रधान केन्द्र रहा है। मौर्य साम्राज्य के समय से लेकर प्रतापी गुप्तों का आधिपत्य अवन्ति पर रहा है और उनके युवराज उज्जयिनी को राजधानी बनाकर यहाँ का शासन करते रहे,[96] किन्तु सम्भवतः 200 ई0पू0 शुंग शासनकाल में अवन्ति की राजधानी उज्जयिनी न होकर विदिशा ही थी, जिसका शासक अग्निमित्र (पुष्यमित्र शुंग का पुत्र जो मालविकाग्निमित्रम् का नायक है) था इस समर्थन में बाणभट्ट ने भी 'विदिशा' को ही 'अवन्ति' की राजधानी माना है। (कादम्बरी पूर्वाद्ध)

---

92 रघुवंश–6/35

93 रघुवंश–7/35

94 पूर्वमेघ–33, (मेघदूत)

95 पूर्व मेघ–37 (मेघदूत)

96 स्मिथ–अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया पृ0–163

अवन्ति को डॉ० डी0सी0 सरकार ने उज्जैन के आस–पास का प्रदेश (ग्वालियर तक विस्तृत) स्वीकार किया है।[97] श्री केदार नाथ शर्मा इसे मालवा प्रान्त का एक मानते हैं, जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी जो विक्रमादित्य की भी राजधानी थी, कहते हैं।[98]

वस्तुतः प्राचीन अवन्ति राज्य, मालवा पठार का वह भाग माना जा सकता है, जो वर्तमान ग्वालियर से नर्मदा तक विस्तृत है।

पूर्व–पश्चिम में इसका विस्तार वेतवा और चम्बल नदियों के मध्य में अर्थात प्राचीन अनूप और दशार्ण देशों के बीच प्रतीत होता है। उज्जयिनी ही (वर्तमान उज्जैन) इसकी राजधानी रही थी जो राजनैतिक, व्यापारिक तथा धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रही है। आज भी यहाँ 'महाकालेश्वर' का मन्दिर शिप्रा तट पर विद्यमान है।

शूरसेनः–

शूरसेन राज्य का उल्लेख इन्दुमती स्व्यंवर प्रसंग में अवन्ति के शासक के पश्चात् महाकवि ने किया है।[99] जिसके अनुसार प्रतीत होता है कि यह एक प्राचीन तथा प्रसिद्ध राज्य था। इसका नामकरण वासुदेव और कुंती के पिता 'शूर' के नाम के आधार पर ही हुआ है।

---

97 सरकार, डी0सी0–स्टडीज इन दि ज्याग्राफी ऑफ एन्सियन्ट मेडिवल इंडिया, पृ0–90

98 शर्मा, केदारनाथ साररवत–काव्यमिमांसा, परिशिष्ट पृ0–323, पटना, 1965

99 रघुवंश–6/45

महाभारत के समय शक्तिशाली राज्यों के अन्तर्गत इसकी भी गणना होती थी। यह राज्य मथुरा तथा उसके आस–पास के जिलों के क्षेत्र में विस्तृत प्रतीत होता है, क्योंकि इसका भी महाकवि ने (रघु0 9/48 में) जो उल्लेख किया है उसके आधार पर कहा जा सकता है कि तत्कालीन शूरसेन राज्य की राजधानी मथुरा ही थी जिसके राजभवन ठीक यमुना तट पर बने हुए थे, क्योंकि अन्तपुर के सुन्दरियों के यमुना जल में विहार का महाकवि ने संकेत किया है। इस राज्य का रमणीय स्थल वृन्दावन वर्तमान था जो सुन्दर कुञ्जों, उपवनों के लिए आज भी विख्यात है, तथा गोवर्द्धन पर्वत वर्तमान गोवर्द्धन ग्राम के पास एक छोटी पहाड़ी जो मथुरा से 18 या 19 मील दूर है जो अपनी रमणीय कन्दराओं तथा सुन्दर शिलाओं के लिए प्रसिद्ध हैं का भी उल्लेख किया है।[100]

प्राचीन शूरसेन मथुरा जिले के आस–पास का विस्तृत वह भू–भाग था, जिसकी सीमा इस प्रकार निर्धारित की जा सकती है।

उत्तर में कुरूराज (वर्तमान मेरठ के आस–पास का क्षेत्र)

दक्षिण में–चम्बल नदी तथा मत्स्य राज्य

पश्चिम में–ब्रह्मावर्त तथा मत्स्य देश और

पूर्व में–पांचाल राज्य

---

100 रघुवंश–6/50–51

दशार्ण–

दशार्ण प्राचीन भारत का प्राचीन राज्य है। रामायण में इसका उल्लेख नगर के रूप में प्राप्त होता है,[101] किन्तु ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर महाकवि ने जो दशार्ण का उल्लेख किया है, उससे यह राज्य ही प्रतीत होता है।[102] जहाँ के फूले केवड़ों के कारण पाण्डवाभामय उपवनों, वनस्पतियों, कौओं एवं चैत्य आदि पक्षियों के घोसलों से पूर्ण ग्रामों के मन्दिरों, पकी हुई काली जामुनों से लदे वृक्षों वाले वनों के साथ ही महाकवि ने वेत्रवती (वेतवा) नदी के तट पर स्थित इस राज्य की विख्यात राजधानी विदिशा का भी स्पष्ट उल्लेख किया है। ''वकपन्थः' (पूर्वमेघ 29) में महाकवि कालिदास ने दशार्ण की पश्चिमी सीमा में स्थित अवन्ति (जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी) राज्य का भी स्पष्ट संकेत किया है। सामान्यतया दशार्ण राज्य पूर्व मालवा पठार से अभिन्न प्रतीत होता है, जिसमें अविन्त पश्चिमी भाग में, तथा दशार्ण पूर्व में विस्तृत था। इस प्रकार मालवा पठार का वह पूर्वी भाग जो भोपाल रियासत से वेतवा के कुछ पूर्वी प्रदेश तक विस्तृत है दशार्ण कहा जा सकता है यह नाम विदिशा (भिल्सा) के आस–पास से सम्बन्धित वेतवा की संज्ञा धसान (दशार्ण) नदी के नाम के अनुसार निर्धारित हुआ। वासुदेवशरण अग्रवाल के मतानुसार– सामान्यतः दशार्ण की स्थिति वेतवा के कुछ पूर्व तक पूर्वी मालवा[103] से सम्बद्ध प्रतीत होता है।

---

101 वाल्मीकि रामायण–किष्किन्धा० 41/16

102 मेघदूत पूर्व मेघ–25–26.

103 अग्रवाल, डॉ० वासुदेवशरण–भारत की मौलिक एकता, पृ0–56, प्रथम संस्करण 1954 इलाहाबाद

डी0सी0 सरकार के अनुसार यह पूर्वी मालवा तथा उसके आस–पास का प्राचीन नाम है, जिसकी राजधानी विदिशा (वेसननगर, भिल्सा) थी तथा इसके अन्तर्गत वेत्रवती और दशार्ण (धसान) नदियाँ प्रवाहित है।[104]

के0वी0 पाठक विल्सन के मत को स्वीकार करते हुए दशार्ण को वर्तमान छत्तीसगढ़ ही मानते है।[105] जो सम्भवतः (कात्यायन के अनुसार दशन्+ऋण व्युत्पत्ति जन्य रूप में) पहले दश दुर्गो (दि डिस्ट्रिक्ट ऑफ दि टेन सिटाडेल्स) वाला राज्य था।

डॉ0 भगवतशरण उपाध्याय इसे पूर्वी मालवा (जिसमें भोपाल रियासत भी सम्मिलित थी) को दशार्ण निर्धारित करते हैं, जिसकी राजधानी विदिशा थी।[106]

दशार्ण राज्य, वस्तुतः दशार्ण (धसान नदी के आस–पास का प्रदेश प्रतीत होता है, जो मालवा पठार का ही पूर्वी भाग है। इसकी प्रसिद्ध राजधानी विदिशा (भिल्सा) राजनैतिक एवं व्यापारिक महत्व के कारण विशेष विख्यात रही है। दशार्ण राज्य के पश्चिम में अवन्ति (पश्चिमी मालवा) राज्य, पूर्व में चेदि्, मगध, राज्य उत्तर में वत्स और कोशल राज्य, दक्षिण में नर्मदा नदीः विदर्भ राज्य सीमा रूप में निर्धारित किये जा सकते हैं।

जनस्थान :–

---

104 'सकरार' डी0सी–स्टीज इन दि ज्याग्राफी ऑफ ऐन्सियंट ऐण्ड मेडिवल इंडिया, पृ0–150–151, दिल्ली 1950.

105 के0वी0 'पाठक'– मेघदूत 1930 पृ0–82

106 डॉ0 भगवतशरण–कालिदास का भारत, पृ0 120, 1963, काशी (वाराणसी)

महाकवि ने जनस्थान प्रदेश का भी उल्लेख किया है[107] जो प्राचीन दण्डकारण्य का ही दक्षिण का एक भाग प्रतीत होता है, क्योंकि रघुवंश 6/62 में पाण्ड्यराज के वर्णन प्रसंग में जनस्थान का नाम आया है जो प्राचीन पाण्ड्यराज्य का सीमावर्ती (सम्भवतः उत्तर भाग में) प्रदेश प्रतीत होता है। यह निस्संदेह रघु0 13/22 में उल्लिखित जनस्थान से अभिन्न है, जिसका विस्तार माल्यवान पर्वत और पम्पा के दक्षिण में महाकवि ने निर्दिष्ट किया है, किन्तु अन्यत्र (रघुवंश 12/42 में) वर्णित जनस्थान पंचवटी के पास ही प्रतीत होता है। अतः महाकवि कालिदास के अनुसार जनस्थान का विस्तार उत्तर में गोदावरी से दक्षिण में पाण्ड्य राज्य (कावेरी नदी) तक होना चाहिए।

महाकवि भवभूति के अनुसार प्रस्त्रवणगिरि जनस्थान के मध्य भाग में था।[108] यह स्थिति महाकवि कालिदास के दृष्टिकोण से व्याधातक नही कही जा सकती। महाकवि मुरारी अपने अनर्धराघव (अंक 4 तथा 5) में ऋष्यमूक पर्वत को जनस्थान के पास ही बतलाते हैं। इस प्रकार तुंगभद्रा के दोनों ओर जनस्थान स्थिति की संभावना की जा सकती है।

नन्दलाल डे के मतानुसार[109] जनस्थान वर्तमान औरंगाबाद (हैदराबाद) के आस–पास के क्षेत्र से भिन्न नहीं है, क्योंकि उन्होंने औरंगाबाद की पहाड़ियों को प्रस्त्रवणगिरि मान लिया है।

---

107 रघुवंश–6/62, 12/42, 13/22

108 महावीर चरितम् 5/15 तथा उत्तर रामचरितम् 1/26 के पूर्व (भवभूति)

109 'डे' नन्दलाल–ज्याग्राफिकल डिक्शनरी ऑफ ऐन्सियंट ऐण्ड मेडिवल इण्डिया पृ0–30

प्राचीन सामग्री के अनुसार सिंद्ध होता है कि जनस्थान दण्डकारण्य प्रदेश के अन्तर्गत उसका दक्षिणी भाग ही था किन्तु जहाँ तक प्रस्त्रवणगिरि, ऋस्यमूक पर्वत की स्थिति जन स्थान से सम्बन्धित होने का प्रश्न है, इस आधार पर इसे केवल औरंगाबाद के समीपवर्ती क्षेत्र को ग्रहण कर उसे संकुचित नहीं किया जा सकता, क्योंकि ये औरंगाबाद में स्थित है ही नहीं। डे महोदय का यह भ्रमपूर्ण विचार है। इस आधार पर निस्संदेह जनस्थान को तुंगभद्रा के उत्तर–दक्षिण विस्तृत मानना उचित है। यह विस्तार महाकवि कालिदास के दृष्टिकोण के अनुकूल भी है, अर्थात पाण्ड्य राज्य के उत्तर (कावेरी) से लेकर गोदावरी तक जनस्थान का विस्तार था जो वीहड़ वन नदी एवं पर्वत से युक्त निर्जनप्राय ही था, केवल किष्किन्धा जैसे भागों में कुछ बस्तियाँ आबाद थीं।

सिन्धु :–

महाकवि कालिदास ने सिन्ध देश का उल्लेख रघुवंश[110] महाकाव्य में किया हैं, जिसके अनुसार श्रीराम ने युधाजित के कहने पर यहाँ का राज्य भारत को दिया था। इससे प्रतीत होता है कि केकय राज्य का प्रभुत्व सिन्धु पर रामायण काल में रहा होगा।

सिन्धु देश का विस्तार सिन्धु नदी के दोनों ओर उसकी मध्यवर्ती घाटी में था। टीकाकार बल्लभदेव के अनुसार ज्ञात होता है कि यह राज्य गान्धार (गन्धर्व लोगों) से भी आक्रान्त रहा था –

(सिन्धुकुलं देशम् गन्धवै राक्रान्तोऽयं देशः इति बल्लभः)

महाकवि के अनुसार यह स्पष्ट है कि सिन्धु में चट्टानी नामक विशेष रूप से नमक के पहाड़ से उत्पन्न होता था, जिसे उसने 'सैन्धव' की संज्ञा देकर आज के अश्वों द्वारा चाटे जाने का भी उल्लेख किया गया है (रघुवंश 5/73) (सैन्धवशिला शकलानिः वाह्यः) वैसे सिन्धु के घोड़े भी बनायु या विल जाति से कम अच्छे नहीं समझे गये हैं।

इस प्रकार महाकवि कालिदास के उल्लेख के आधार पर सिन्धु का विस्तार उत्तर–पूर्व में केकय, उत्तर पश्चिम में, गान्धार, तथा दक्षिण पूर्व में सौवीर, एवं भद्र, पूर्व में मत्स्य, बह्मवर्त राज्यों के मध्य में ज्ञात होता है। सिन्धु नदी इस राज्य को मध्य घाटी बनाकर प्रवाहित होकर समृद्ध स्वरूप देती रही है। यह प्राचीन राज्य अब पश्चिमी पाकिस्तान के अन्तर्गत है।

---

110 रघुवंश–15/87

केकयः–

प्राचीन साहित्य में केकय का उल्लेख पर्याप्त रूप में प्राप्त होता है। रामायण के अनुसार यहाँ के कुत्ते विशेष रूप से प्रसिद्ध थे।[111] महाकवि ने केकय का उल्लेख (रघु०–9/17), मगध कोशल–केकय शासिना दुहितरो में किया है, जिसके अनुसार महाराज दशरथ ने केकयी राजकुमारी के साथ विवाह किया था।

नन्दलाल डे[112] के अनुसार केकय राज्य व्यास और सतलज नदियों के मध्य भाग में विस्तृत है।

डॉ0 मोतीचन्द्र के मत से केकयों का सम्बन्ध भद्र से था तथा इनका देश आधुनिक पंजाब के शाहपुर और झेलम जिलों में था।[113]

कनिंघम ने इसकी राजधानी गिरिब्रज का प्रत्यभिज्ञान जलालपुर से किया है। (आ0स0रि0 जिल्द 2, जिल्द, 2 पृ0 14) डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल[114] नमक की पहाड़ी के क्षेत्र खिवड़ा को जो शाहपुर–झेलम से अभिन्न है, केकय स्वीकार करते है। डी0सी0 सरकार (राय चौधरी के मत के आधार पर) व्यास और झेलम के क्षेत्र को प्राचीन केकय मानते हैं जिसकी राजधानी गिरिव्रज (जलालपुर) थी[115]

---

111 बाल्मीकि रामायण अयोध्या काण्ड 70/20

112 'डे' नन्दलाल–ज्यॉग्राफीकल डिक्शनरी ऑफ एन्सियंट ऐण्ड मेडिवल इण्डिया, पृ0–40, 1899

113 विक्रमांक नागरी प्रचारिणी पत्रिका सं0 डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल पृ0–183, काशी

114 वही–पृ0–238

115 'सरकार' डी0सी–स्टीज इन द ज्यॉग्राफी ऑफ ऐण्ड मेडिवल इण्डिया पृ0–25, 1960 दिल्ली

डे का केकय राज्य की स्थिति सम्बन्धी मत भ्रमपूर्ण होने के कारण माननीय नहीं हो सकता, क्योंकि सतलज और व्यास नदियों के मध्य का क्षेत्र अधिक दक्षिण–पूर्ण में पड़ता है, जबकि वाल्मीकि रामायण में भारत की केकय अयोध्या पात्र के आधार पर इसकी स्थिति और अधिक उत्तर पश्चिम को प्रतीत होती है। इसीलिए झेलम–चिनाब मध्य के क्षेत्र (शाहपुर झेलम गुजरात) को केकय मानना उचित है। इसके उत्तर में कम्बोज, उत्तर–पश्चिम में गान्धार, दक्षिण–पश्चिम में सिन्धु राज्य की सीमाएं थी।

कारापथ :–

यह रामायण कालीन राज्य था, जिसका नाम उस समय 'कारुपथ' था।[116] यहाँ की जलवायु स्वास्थ्यप्रद थी। लक्ष्मण के पुत्र अंगद और चन्द्रकेतु को भगवान राम ने यहीं का शासक बनाया था।

महाकवि कालिदास ने इसी तथ्य को ग्रहण कर इसे (कारापथ) नाम से ग्रहण किया है।[117] विल्सन के विचार, से यह कारापथ राज्य हिमालय की घाटी से बाहर नहीं है,[118] किन्तु इससे इसकी निश्चित स्थिति का ज्ञान नहीं होता है। बल्लभ का चन्द्रपथ बहुत कुछ रामायण (उत्तर 102/6) के चन्द्रकान्त के समीप प्रतीत होता है। जो चन्द्रकेतु के शासन का प्रधान केन्द्र था।

---

116 वाल्मीकि रामायण उत्तरकाण्ड 102/5–6

117 रघुवंश–15/89

118 विष्णुपुराण, वाल्युम 3, पृ0–390

ब्रह्मावर्त – (कुरूक्षेत्र)– महाकवि ने मेघ–मार्ग में दशपुर (वर्तमान मन्दसौर) के पश्चात् बह्मावर्त का एक महान जनपद[119] (प्रान्त) के रूप में उल्लेख किया है। साथ ही महाभारत युद्ध की स्मृति उसे दिलाते हुए उससे सम्बन्धित कुरूक्षेत्र एवं पवित्र सरस्वती का भी वर्णन किया है। मनु के अनुसार[120] ब्रह्मावर्त प्रान्त सरस्वती और दृषद्वती नदियों के मध्यवर्ती भूभाग से भिन्न नहीं है, अर्थात पूर्व पंजाब के पटियाला, अम्बाला, कर्नाल, पानीपत, हिसार आदि के जिलों का भू–प्रदेश ब्रह्मावर्त के अन्तर्गत ग्रहण किये जा सकते है।

महाभारत काल में सरस्वती नदी अपने अविरल प्रवाह से इस विशाल जनपद को सिचिंत करती होगी।

कुरूक्षेत्र ब्रह्मावर्त का ही एक विशाल भू–भाग है, जो मुख्यतः थानेश्वर के आस–पास की भूमि से भिन्न नहीं है। इसमें पानीपत, सोनीपत, आमिन का क्षेत्र सम्मिलित किया जा सकता है।[121] बी0ए0 स्मिथ ने[122] ब्रह्मावर्त के लगभग आधे से अधिक भाग में कुरूक्षेत्र को प्रदर्शित किया है, जिसे कई वनों में बांटा है। क्षेत्र की लम्बाई–चौड़ाई 30 मील से भी अधिक है। वस्तुत इतने बड़े व्यापक रूप के महायुद्ध के लिए इतनी भूमि का क्षेत्र अधिक नहीं कहा जा सकता।

निषध :–

---

119 पूर्वमेघ–52

120 मनुस्मृति–2

121 ज्यॉग्राफिकल डिक्शनरी ऑफ ऐन्सियंट ऐण्ड मेडिवल इण्डिया, पृ0–45, 1999, कलकत्ता

122 'स्मिथ' बी0ए0–हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (ऐन्सियंट इण्डिया) पृ0–29, आक्सफोर्ड प्रेस

महाकवि के उल्लेखानुसार[123] ज्ञात होता है कि सम्राट अतिथि की रानी निषध राजा की पुत्री थी। महाभारत का निषध राज्य मालवा पठार के अन्तर्गत प्रतीत होता है, जो सम्भवतः विदर्भ राज्य उत्तरी–पश्चिमी सीमा पर था।

नन्दलाल डे[124] ने नलपुर को नरवर (ग्वालियर से 40 मी0 दक्षिण–पश्चिम) माना है और 'लसेन' के मत के अनुसार सम्पूर्ण निषध राज्य को सतपुड़ा श्रेणियों के साथ–साथ बरार (विदर्भ राज्य के भाग) के उत्तर–पश्चिम में विस्तृत माना है।[125]

डी0सी0 सरकार[126] निषध को पारियात्र पर्वत से संबंधित कर नलपुर (नरवर, मध्य प्रान्त के शिवपुरी जिले) के आस–पास निर्दिष्ट करते है।

वरगेस के[127] मतानुसार निषध राज्य की स्थिति मालना के दक्षिण में ज्ञात होती है, जो भ्रमपूर्ण है।

उपर्युक्त सभी मत भ्रान्तिपूर्ण है, क्योंकि डे महोदय ने नरवर के साथ सतपुड़ा श्रेणियाँ भी मानी है जिनसे उनका कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार सरकार के पारियात्र (अरावली श्रेणियां) को भी नरवर के आस–पास दूर तक नहीं पाते। वरगेस के मत को ग्रहण करके भी निषध की स्थिति का ठीक ज्ञान नहीं होता। नरवर (प्राचीन नलपुर) के आधार पर प्राचीन निषध का विस्तार चर्मण्वती और सिन्धु नदियों

---

123 रघुवंश–18/1

124 नन्दलाल डे– ज्योग्राफिकल डिस्कवरी ऑफ ऐन्सिएंट ऐण्ड मेडिवल इण्डिया, पृ०–45, कलकत्ता 1899.

125 वही, पृ०–141.

126 'सरकार' डीसी0–स्टडीज इन दि ज्यॉग्राफी ऑफ ऐंसियन्ट ऐण्ड मेडिवल इंडिया, पृ0–34 1960 दिल्ली।

127 ऐन्टीक्विटीज ऑफ काडियावाड़ ऐण्ड कच्छ पृ0–131

के मध्य भाग में मानना उचित है जो मालवा पठार का उत्तरी भाग है। नलपुर (वर्तमान नरवर) को कनिंधम ने[128] ग्वालियर से लगभग 60 मील दक्षिण–पश्चिम में स्थित अंकित किया है। (22–10/2 अक्षांश 77^0–44 पू0 देशान्तर) अतः इसी के आस–पास चम्बल–सिन्धु के क्षेत्र को प्राचीन निषध मानना ठीक प्रतीत होता है।

सीमान्त तथा विदेशी –राज्य :–

पारसीक राज्यः– प्राचीन भारत के सीमान्त राज्यों में पारसीक (पारस) राज्य का प्रमुख स्थान है। महाभारत के पूर्व ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं मिलता। महाभारत में[129] यवन, चीन, कम्बोज, हूण आदि के साथ पारसीकों का भी उल्लेख हुआ है, जो म्लेच्छ जाति के अन्तर्गत शूरवीर माने गये हैं। महाकवि कालिदास ने रघु–दिग्विजय के प्रसंग में पारसीक राज्य का उल्लेख किया है जिसमें रघु अपरान्त–त्रिकुट विजय के पश्चात् ससैन्य जल–मार्ग से न जाकर स्थल मार्ग से पारसीकों को जीतने गये थे।[130] इसी सन्दर्भ में पारसीक (यवन) लोगों की पत्नियों का मदिरापान प्रवृत्ति (रघु0–4/61) पारसीक, घुड़सवार, सैनिकों की मधुमक्खियों से भरे छत्ते जैसी दाढ़ियों (रघु0 4/62–63) तथा यहाँ उत्पन्न होने वाली द्राक्षा (अंगूर) लताओं; उससे बनने वाली मदिरा आदि का भी महाकवि ने स्पष्टतः वर्णन प्रस्तुत किया है।

---

128 कनिंघम– ऐन्सिएंट ज्यॉग्राफी ऑफ इण्डिया एडिटेड वाई0एस0एन0 मजूमदार मानचित्र सं0–10

129 महाभारत, भीष्मपर्व अध्याय 9

130 रघुवंश–4/60

रघुवंश के टीकाकार 'दिनकर' मिश्र पारसीक को यवन वल्लभदेव इन्हें पश्चिमी दिशीयान (पाश्चात्य) तथा हलायुध कोष 'वानायुज नाम निर्धारित करते हैं। यहाँ के अश्व विशेष रूप से प्रसिद्ध होते है, जिन्हें 'वनायुदेश्या' की संज्ञा कवि ने दी है।[131]

यह पारसीक राज्य पर्शिया या फारस से भिन्न नहीं प्रतीत होता है जो वर्तमान विलोचिस्तान, द० अफगानिस्तान तथा पूर्वी ईरान को मिलाकर बना था।

प्रो0 जयचन्द्र विद्यांलकार[132] के मतानुसार ये पारसीक लोग सिन्धु तक के Sassanias है जो अफगानिस्तान के वर्तामन 'Parsiwans' के पूर्वजों से भिन्न है।

डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल[133] पारसीक की पहचान पर्शुया पारस से करते हैं। यह पारस, फारस से अभिन्न है।

डी0सी0 सरकार[134] भी पारसीकों को पर्शियन ही मानते है। सीमान्त पश्चिमी राज्यों में पर्शिया, पारस को ही पारसीक मानना चाहिए, क्योंकि महाकवि के प्रतस्थे स्थल वर्त्मना (रघु 4/60) से ध्वनित होता है कि रघु जलीय (समुद्री) मार्ग से सुगमता से पारसीक जा सकते थे (अपरान्त तट से पारस जा सकते थे) किन्तु फिर भी रघु ने स्थल मार्ग को ही ग्रहण किया। 'टीकाकार मल्लिनाथ' ने इसका कारण धार्मिक दृष्टिकोण माना है। (समुद्रयानस्य निषिद्धत्वा दितिभावः) , किन्तु ऐसा समझना ठीक नहीं है। इसके अनेक कारण

---

131 रघुवंश–5/73

132 'विद्यालंकार' प्रो. जयचन्द्र–प्रोसीडिंग ऐण्ड ट्रान्सलेशन ऑफ द सिकस्थ ओरियंटल कान्फ्रेन्स, पृ०–102, 1930, पटना।

133 विक्रमांक–नागरी प्रचारिणी पत्रिका, प्र0–237, सं0–2000 वि0 काशी

134 सरकार डी०सी०–स्टडीज इन द ज्यॉग्राफी ऑफ ऐन्सियंट ऐण्ड मेडिवल इण्डिया, पृ०–18 1960, दिल्ली।

सम्भवत है जैसे फारस के समुद्री मकरान तट का यौद्धिक दृष्टि से अनुकूल न होना, अच्छे बन्दरगाह का न होना अथवा समुद्री सुरक्षा के साधन न होना आदि। फिर स्थल मार्ग से अभियान करना 'रघु' की दिग्विजय की सही सार्थकता है।

महाकवि का अभीष्ट तत्कालीन राष्ट्र की आदर्श सीमा रेखा ही निर्धारण करना प्रतीत होता है, जिसे स्थली मार्ग के अभियान से अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। रघु दक्षिण मरूस्थल से होते हुए पारसीक राज्य की पूर्वी किरथर सुलेमान श्रेणियों को बोलन दर्रे से पारकर प्रविष्ट हुए होंगे। पारसीक सिन्धु नदी के पश्चिम का सीमान्त विशाल राज्य है, जिसमें विलोचिस्तान, अफगानिस्तान का भाग सम्बन्धित है तथा यहाँ के कन्दहार (कन्धार) काबुल, गजनी, होती हुई बल्ख (वैक्ट्रिया) तक खीचीं जाने वाली रेखा टाल्मी द्वारा निर्दिष्ट पश्चिमी सीमा रेखा के अनुकूल ही पड़ती है।[135] यही प्रदेश चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की वैक्ट्रिया–विजय करने में प्रभावित हुआ था।[136] मेहरौली का लौह–स्तम्भ जिसमें पारस, हिन्दुकुश तथा वंक्षु (Oxus) घाटी उत्तरी–पश्चिमी सीमा निर्दिष्ट व्यक्त करते हैं; प्रमाणरूप में ग्रहण किया जा सकता है। प्रो0 जयचन्द्र ने पारसीवान्स से भिन्न जिन सासनी लोगों को पारसीक माना है वे, सिन्धु के पश्चिमी प्रदेशों के पल्हवों से भी अभिन्न प्रतीत होते हैं, क्योंकि पारसी और पल्हवी अब भी समानार्थक समझे जाते है। लाला सीताराम[137] के विचार से यही पल्हव या पारसी अश्वकान (अफगान) यवन लोगों से भिन्न नहीं है। उस समय की भाँति अब भी फारस द्राक्षा (अंगूर) लताओं के लिए यहाँ का एरियाना प्रदेश विख्यात है।

---

135 मजूमदार – मैकक्रिण्डल्स टाल्मी–पृ0–33–34

136 'स्मिथ' बी0ए0–अली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, चतुर्थ सं0 पृ0–306

137 लाला सीताराम–भूगोल–(भुवन कोषाङ्ग) 'प्रयाग रघु'–दिग्विजय पृ0–36

विल्सन के अनुसार[138] हिरात के आस–पास एल्वुर्ज, दक्षिण श्रेणियों एवं ट्रॉंजियाना आदि अंगूर–लता उत्पादक एरियाना क्षेत्र से ही सम्बन्धित है। फारस में अब भी शीराज की अंगूरी शराब प्रसिद्ध है, जिसे रघु के सैनिकों ने अजिन वस्त्रों पर बैठ कर पान किया (रघु0 4/63), पर्शिया बहुमूल्य अर्जित (चर्म) वस्त्रों के लिए भी महत्वपूर्ण माना गया है। पेरीप्लस ने[139] चमड़े के कुर्ते पारस के विभिन्न भागों से अडोलिस के लिए निर्यात करने का उल्लेख किया गया है। अतः महाकवि कालिदास ने दाढ़ी वाले घुड़सवार पारसीक (यवन) वर्तमान ईरानियों से भिन्न नहीं प्रतीत होते हैं और तत्कालीन फारस (पर्शिया) सिन्धु के पश्चिम में दक्षिण मकरान से लेकर उत्तर हेरात के आस–पास (द0पू0 अफगानिस्तान) तक विस्तृत प्रतीत होता है। पश्चिम में वर्तमान पारस पठार का भी पूर्वी भाग इसमें सम्मिलित होगा।

वाह्लीक (हूण–राज्य) :–

पारसीकों को पराजित करने के पश्चात रघु ससैन्य सीधे उत्तर को (उदीची) दिशा की ओर बढ़े और वंक्षु (Oxus) नदी के तट पर उनके घोड़ों ने लोट–लोट कर विश्राम करने में अपने शरीरों में केशर लगा ली। वहाँ हूण राज्य के शासकों ने 'रघु' से लोहा लिया, किन्तु उसके पराक्रम के सामने परास्त हो गये।[140] रघुवंश के प्रायः प्रमुख टीकाकर वंकु या वंक्षु शब्द ही ग्रहण करते है–जैसे बल्लभदेव, चरित्रवर्धन, आदि[141] जबकि

---

138 'विल्सन'–एरियन एक्टिक्विटिज–पृ0–150

139 पेरीप्लस ऑफ दि एरीथ्रियन सी0 पृ0–70

140 रघुवंश–4/67– 4/68

141 बल्लभ–वंकूतीर विचेस्टनैः इति पाठ्यादृत्य वंकू (वंक्षू) नाग्नी नदी इत्यादि चरित्रवर्धन–वंकूनाम.....
....

मल्लिनाथ वंक्षु के स्थान पर सिन्धु को भ्रमवश ग्रहण करते है, किन्तु कश्मीर के अतिरिक्त केशर की फसल के लिए वक्षु घाटी भी, कम विख्यात नहीं रही है। इसे क्षीर स्वामी[142] ने भी अपनी टीका में प्रतिपादित किया है। अतः वंक्षु (OXUS) नदी की मध्यघाटी में विस्तृत प्रदेश को हूणराज्य वाहलीक मानना उचित प्रतीत होता है। कुछ ऐतिहासिकों के अनुसार प्रमाणित हो चुका है कि 5वीं शती के आस–पास शक्शिाली (हूण) जाति का प्रभुत्व था। डॉ० जे0जे0 मोदी के मत से पूर्वी तातार (चीन) से निष्कासित ये हूण प्रथम शती ई0 से काशगर और वंक्षु (OXUS) के क्षेत्र में प्रवीष्ट हो गये थे।[143]

ऑरेलस्टीन[144] के अनुसार 5वीं शती के मध्य में ऑक्सस घाटी में इस जाति ने शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना की थी, जहाँ से उसने गांधार और दक्षिण में सिन्धु पार तथा खोतन तक का भाग विजित किया। सम्भवतः उसी समय यही हूण जाति ही पारसीक राज्य की शत्रु थी, जिसने 425 ई0 में पारस पर असफल हमला किया और विवशतः उन्हें वंक्षु (OXUS) तक पारसीक राज्य की सीमा स्वीकार करनी पड़ी थी।[145]

'डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल' प्राचीन वाह्यलीक (वैक्ट्रिया) को आधुनिक बल्ख से अभिन्न मानते हैं।, (भारत की मौलिक एकता पृ0–163)। महाभारत आदिपर्व 16/16 के आधार पर 'डॉ0 मोतीचन्द्र' इस राज्य को वर्तमान उत्तरी अफगानिस्तान के बल्ख से भिन्न नहीं स्वीकार करते है।

---

142 के0जी0 ओझा के क्षीरस्वामी प्रकाशन पृ0–110

143 अर्ली हिस्ट्री ऑफ दि हुनाज ऐण्ड देयर इनरोड्स इन इण्डिया ऐण्ड पार्शिया पृ0–545

144 अर्ली हिस्ट्री ऑफ दि हुणाज, 656

145 मोदी–अर्ली–हिस्ट्री ऑफ दि हुन्स पृ0–566–67

(विक्रमाङ्क नागरी प्रचारिणी पं0 काशी, 2000 वि०पृ0 181) 'प्रो0 जयचन्द्र विद्यालंकार' के अनुसार हूण राज्य निश्चितरूप से वर्तमान ऑक्सस (OXUS) की सहायक वंक्षु तथा अक्षु नदियों के दोआब क्षेत्र से सम्बन्धित था।[146] श्री एस0के० स्वामी आयंगर का भी यही विचार है (India Autiquiry, 1919, P. 65) डी0सी0 सरकार महाम्लेच्छ के पूर्व में कम्बोज के पश्चिम अफगानिस्तान के उत्तर में वर्तमान बल्ख को प्राचीन (वाह्लीक) बैक्ट्रिया मानते है। (स्टडीज इन दि ज्यॉग्राफी ऑफ एन्सियंट एण्ड मेडिवल इंडिया, पृ0–94, 1960, दिल्ली।

वस्तुतः तत्कालीन ऐतिहासिक झलक ही कवि के हूणों के उल्लेख से दृष्टिगत होती है। निश्चित रूप से रघुवंश 4/67 की वंक्षु नदी की मध्यघाटी अकसव वक्साब दो आब के क्षेत्र में हूणों का राज्य था जिसे वाहलीक या बल्ख की संज्ञा दी जा सकती है। उस समय इस राज्य के दक्षिण में पारसीक तथा गान्धार, पूर्व में कम्बोज, पश्चिम में मध्य एशिया राज्य स्थित थे।

कम्बोज :–

भारत का उत्तर सीमान्त प्रदेशीय एक प्राचीनतम राज्य है। प्राचीन साहित्य[147] में इसका प्रचुर रूप में उल्लेख प्राप्त होता है। हूण राज्य (बल्ख या वंक्षु नदी की घाटी में) के पश्चात ससैन्य रघु ने आगे बढ़कर कम्बोज लोगों को झुकाया।[148] इस आधार पर कम्बोज की स्थिति (सामान्यतः वंक्षु की मध्यघाटी) बल्ख के पूर्व में प्रतीत होती है। इसके

---

146 विद्यालंकार प्रो0 जयचन्द्र–प्रोसीडिंग ऐण्ड ट्रान्स0 ऑफ दि सिकृस्थ ऑल इण्डिया ओरयंटल कान्फ्रेन्स, पृ0–102, पटना, 1930

147 वल्मीकि रामायाण, किष्किन्धा का 43/12, महाभारत भीष्म/अध्याय समा0 11/24 उद्योग 186/80

148 रघुवंश–4/69

अतिरिक्त परवर्ती महाकवि कल्हण[149] ने भी कम्बोज को कश्मीर के उत्तर में विस्तृत वर्णित किया है। अतः वर्तमान बल्ख के पूर्व में अफगानिस्तान के उत्तर पूर्व का तथा कश्मीर के उत्तर पामीर पठार के भाग को कम्बोज राज्य निर्धारित करना उचित प्रतीत होता है। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल[150] गाल्चा वोली बोलने वाले पामीर प्रदेश को, जो बल्ख के पूर्व में पूर्व में विस्तृत हैं। कम्बोज से अभिन्न स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार मध्यकालीन युग में यही भाग 'कम्बोह' कहलाता है।

महाकवि के इस प्रंसग के आधार पर कम्बोज के शासकों ने श्रेष्ठ जाति के घोड़े स्वर्ण रत्न, हीरे आदि की धन–राशि को भेंट की थी।[151]

श्री जयचन्द्र का बदख्शां और पामीर के आस–पास के प्रदेश को ही प्राचीन कम्बोज मानना उचित प्रतीत होता है, क्योंकि वुड ने अपनी वंक्षु यात्रा में बताया है कि इशिकाश्म से 20 मील की दूरी पर घारान प्रदेश में माणिक्य की खानें हैं, कोकचर की घाटी में राजवर्त की खाने हैं। वदख्शाँ की चाँदी की खाने भी प्रसिद्ध थी।

(बुड, पृ0–171)[152] टैवरनियर[153] के अनुसार भी कश्मीर चार का वैदुर्य उत्पन्न करने वाला पर्वत है, इसी को वाल ने (36^0 10, उ० 71^0 पूर्व में) फरगामु के पास बदख्शां में स्थित स्वीकार किया है।[154] यद्यपि भ्रमवश फाउचर ने नेपाली परम्परा के आधार पर

---

149 राजतरंगिणी–सं0 औरेलस्टेइन पृ0–104, 4/163–176

150 पुराना, वॉल्यूम 6 सं. 1 जनवरी, 1964, पृ० 221–29, बनारस तथा विक्रमांक नागरी प्रचारिणी पत्रिका, दि० 2000, पृ०–238.

151 'अग्रवाल' वासूदेवशरण–भारतभूमि पृ0–297–305

152 उद्धत–विक्रमांक : नागरी प्रचारिणी पत्रिकाः वि0 डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल पृ0–159

153 ट्रेवेल्स इन इण्डिया 2, पृ0–25

154 इकोनोमिक ज्योला जी ऑफ इंडिया पेज–529

इस राज्य को तिब्बत में लिया है, जबकि ग्रियर्सन ने ईरान में (जे0आर0एस0 1911, पृ0–802) डॉ० राय चौधरी ने पांचाल के उत्तर में (छिमल) तथा डॉ० भण्डारकर ने (महा0 8/4–5) कर्ण राजापुरं–गत्वा, काम्भोजा निर्जितस्त्वया के आधार पर) कश्मीर के दक्षिण में छिमल में राजौरी के आस–पास कम्बोज माना है, किन्तु इन सबका निराकरण करते हुए प्रो0 जयचन्द्र विद्यालंकार[155] ने गाल्चा बोली बोलने वाले प्राचीन जनपद को ही कम्बोज प्रमाणित कर दिया है, जो कल्हण के अनुसार कश्मीर के उत्तर में तथा महाकवि कालिदास के अनुसार हूण राज्य (वंक्षु–बल्ख) से पूर्व में अनुकूल रूप से विस्तृत पाया जाता है जिसमें पामीर बदख्शां का अधिकांश क्षेत्र सम्मिलित है।

इसके अतिरिक्त 'लांगमैन' की 'सीनियर ऐटलस ऑफ इण्डिया एडी0 जार्ज फिलिप, एफ0आर0जी0एस0 भाग 2, मैप न0 ए) मे 250 ई0पू0 के ऐतिहासिक भारत मानचित्र में कम्बोज की स्थिति (हिमालय के उत्तर कश्मीर के पूर्व), अनुकूल प्रतीत होती है। 'लालासीताराम'[156] लद्दाख के उत्तरी भाग (गिलगित घाटी को भी इसमें सम्मिलित करते है, जहाँ कवि के अनुसार अखरोट और घोड़े भी प्रधानतया होते है। यहाँ के मूल निवासी 'कम्पोह' हैं, जो मुसलमान होकर काबुल भारत में चले आये (उनमें से कुछ) इस प्रकार कम्बोज वर्तमान कश्मीर के उत्तर में पामीर बदख्शां प्रदेश के अन्तर्गत ग्रहण किया जाना चाहिए।

लंका :–

---

155 प्रोसीडिंग ऐण्ड ट्रान्स आप दि सिक्स्थ आल इण्डिया ओरियंटल कान्फ्रेन्स पत्रिका पृ0–107–108, 1930

156 रघुवंश–रघु–दिग्विजय–भूगोल (भूवन कोशाङ्ग) पृ0–32, मई, जून, जुलाई प्रयाग– 1932

भारतीय प्रायद्वीप के दक्षिण में सुप्रसिद्ध सिघंल का लकाद्वीप जिसे वर्तमान मनार की खाड़ी इस उप महाद्वीप से पृथक किये है, किसी से अपरिचित नहीं है। महाकवि कालिदास ने इसका उल्लेख रघुवंश 12/63–66, 81 में किया है जिसके अनुसार स्पष्ट ज्ञात होता है कि लंका के चारो ओर विस्तृत सागर था जिसे लघु परिवार की भाँति राम ने कपि–भालु रीछ जाति की सेना द्वारा निर्मित सेतु पार उतर कर रावण द्वारा शासित इस द्वीप में प्रवेश किया था।

लंका वर्तमान सीलोन (बौद्ध कालीन सिंहल द्वीप) या लंका से भिन्न नहीं है, जिसका विस्तार द0 उ0 6^0–10, उ0 तथा पश्चिम से पू0 69^0 45 से 82^0 पूर्व तक है। इसका बौद्धकाल से ही व्यापारिक क्षेत्र में विशेष महत्वपूर्ण स्थान रहा है। लंका की पुरानी राजधानी अनुराधपुर जो उत्तरी मध्यवर्ती मैदानी भाग में स्थित है, विशेष विख्यात रहा है।

हिन्देशिया (द्वीपान्तर) :–

महाकवि ने अपरोक्ष रूप में हिन्देशिया का भी उल्लेख किया है[157] जहाँ से तत्कालीन भारत लौंग (लवंग–पुष्प) का आयात करता था। डॉ० मोतीचन्द्र के मतानुसार[158] गुप्तकाल तक हिन्देशिया में भारतीय उपनिवेश बन चुके थे और पारस्परिक सांस्कृतिक तथा व्यापारिक सम्बन्ध (गुप्तयुग में समृद्ध हो चुका था) इस पूर्वी द्वीप समूह की संज्ञा 'द्वीपान्तर' संस्कृत साहित्य में प्रायः प्रयुक्त हुई है, जिसमें सुमात्रा, जावा, बोर्नियों आदि द्वीप सम्मिलित है।

अतः इन्हें दूसरे रूप में 'हिन्देशिया' नाम के अन्तर्गत ग्रहण किया जा सकता है। यह हिन्देशिया (द्वीपान्तर) वस्तुतः लवंग (लौंग), इलायची आदि की उपज के लिए तथा बाहर को उसे निर्यात करने के लिए साहित्य में[159] प्रसिद्ध रहा है, जिसमें प्रमुख स्थान सुमात्रा एवं जावा का था।[160] सातवीं शती के आस–पास भारत तथा द्वीपान्तर (हिन्देशिया) के बीच खूब व्यापारिक रूप में जहाजरानी होती थी, इसका पता समराइच्च कहा[161] में धारण की कहानी से भी चलता है।

'तिलकमंजरी' के अनुसार[162] द्वीपान्तर (हिन्देशिया) के तटीय नगरों में व्यापारियों की भीड़ एकत्रित हो जाती है। वहाँ के सैनिक निवासी बांस की ढाले रखते थे।

---

157 रघुवंश–6/57 द्वीपान्तर रानी तलवंग

158 सार्थवाह पुत्र मोतीचन्द्र पृ0–174, 1953, पटना,

159 तिलक–मंजरी, द्वितीय सं0 पृ0–136 बम्बई, 1938

160 हर्ष और रॉहिल, चाओजुकुआ, पृ0–61,–78

161 समराइच्चकहा–पृ0–510, बम्बई, 1938

162 तिलकमंजरी–द्वितीय संस्करण–पृ0–124–134

उनकी लिपि कर्णाटक जैसी दुर्वाच्य थी द्वीपान्तर समाज में वर्णाश्रम धर्म शून्य था। स्त्री अपहरण साधारण कार्य था। पुरुषों की वेशभूषा विचित्र (ताड़ के कुण्डल, लोहे के कड़े) थी। स्त्रियाँ भड़कीले वस्त्र पहनती थी।

इस प्रकार द्वीपान्तर या पूर्वी द्वीप समूह वर्तमान हिन्देशिया से भिन्न नहीं है जो भारत के द0पू0 भूमध्यरेखा के दोनों और दक्षिण चीन सागर और पूर्व हिन्द महासागर के मध्य फैले हैं। इनमें सुमात्रा जावा और बोर्नियों प्रमुख रूप से ग्रहण किये जाते है।

चीन :–

प्राचीन साहित्य[163] में चीन का पर्याप्त उल्लेख हुआ है। महाभारत काल[164] में चीनी लोग भगदत्त की सेना में सैनिक थे। सम्भवतः यहाँ चीन से तात्पर्य उपरले वर्मा के चीन लोगों से हो। महाकवि कालिदास ने इसका उल्लेख विशेष प्रकार के (रेशमी कपड़े) 'चीनाशुंक[165] के प्रयोग के साथ किया है जो उस समय सम्भवतः चीन से ही आयात किया जाता होगा। पार्जिटर के अनुसार (मार्कण्डेय– पुराण अनु0 पृ0 319) सम्पूर्ण हिमालय सहित तिब्बत देश चीन है।

डी0सी0 सरकार (महाभारत– 6,9/66 के आधार पर) इस देश के उ0प0 भाग को कम्बोज से सम्बन्धित मानते है।[166]

---

163 वाल्मीकि रामायण किष्किन्धा काण्ड 43/13 महाभारत भीष्म पर्व, अध्याय 9.

164 महाभारत, समापर्व 23/19.

165 अभिज्ञानशाकुन्तलम्–1/32– कुमारसम्भव 7/3

166 स्टडीज इन द ज्यॉग्राफी ऑफ ऐन्सियंट ऐण्ड मेडिकल इण्डिया पृ0 26–1960 दिल्ली।

इस प्रकार प्राचीन चीन को वर्तमान (तिब्बतः उपरी वर्मा) के अतिरक्त पूर्व तक प्रशान्त सागर तक विस्तृत मानना उचित है। पाँचवी शती के आस–पास यह शक्तिशाली साम्राज्य था।

कतिपय आदिम जातियों के प्रदेश :–

महाकवि कालिदास ने अपनी कृतियों में केवल उच्चवंशीय आर्य शासित जनपदों, राज्यों का ही वर्णन नहीं किया, अपितु सुसभ्यजनों की दृष्टि में उपेक्षित प्रायः अनार्य अस्पर्श समझी जाने वाले भारतीय आदिम जातियों का भी सजीव चित्रण अपनी कृतियों में किया है। इनमें प्रमुख हैं– किरात, किन्नर, (उत्सवसंकेत) यक्ष, गन्धर्व, विद्याधर, नाग, पुलिन्द, बनेचर (वनचर), निषाद आदि जिनके स्वरूप, रहन–सहन कवीलों तत्संबंधित प्रदेशों का प्रत्यभिज्ञान अधोलिखित है –

किरात :–

प्राचीन साहित्य[167]में किरात जाति का पर्याप्त उल्लेख हुआ है। महाभारत में पाण्डवों की यात्रा किरात राज्य से हुई थी, जिसका प्रतिनिधि सुबाहु था (वन 145/25–26) राजसूय यज्ञ में किरातों ने युधिष्ठिर को उपायन में चमड़े, चन्दन, अगर सोना आदि, द्रव्य भेंट किये थे। (सभा0 48/8) मनु के अनुसार[168] किरातो का पहले तो अस्तित्व क्षत्रियों जैसा था, किन्तु बाद में क्रियालोपवश ये शूद्रों जैसे हो गये। कवि ने अपनी कृतियों[169] में किरातो का उल्लेख किया है, जिसके अनुसार यह जाति प्रधानतया हिमालय प्रदेश में रहा करती थी।

(रघवुंश–4/76, कुमारसम्भव 1/6, 15) जिसका प्रधान धंधा शिकार खेलना तो था ही, किन्तु उसके साथ इससे प्राप्त मूल्यवान पदार्थ (गज–चर्म, गज दन्त, मुक्ता आदि) प्राप्त कर व्यापारियों को बेंच देते थे या राजाओं को भेंट में समर्पित करते थे। महाकवि के अनुसार इनकी स्त्रियाँ राज–परिवार या राज–दरबार में चॅवर डूलाने का कार्य किया करती थी (रघुवंश 16/57) सम्भवतः चंवर भी इनके द्वारा प्राप्त चंवरी मृग की पूँछ के वालों से बनते थे।

फूशे के उल्लेखानुसार[170] यह विदित होता है कि किरातो का अस्तित्व वैदिक युग में आर्यों के कबीले पूर्व भारत में अग्रसर होने के समय यहाँ था, क्योंकि उनके अनुसार

---

167 महाभारत वन0 140/25–26, सभा0 48/8, स्कन्दपु0 'केदार' 18–1/40–55

168 मनुस्मृति–10/43–44

169 रघुवंश 4/76, 16/57 कुमारसम्भव 1/6–15

170 लवैन्य रत दि ला एद, भाग–2 पृ0–184–185

आर्यो के बदले समूह में सार्थवाहों की रक्षा करते हुए आगे योद्धा चलते थे कि हजार जाति में रहने वाले किरात उन पर हमला न कर दें। सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार ने सर[171] हर्बर्ट रिसले, ए0सी0 हैडूल, डॉ० गुहा आदि नृतत्वशास्त्रियों के मत को उद्धृत करते हुए इन्हें मंगोलायड' वर्ग में स्वीकार किया है, जिसके अनुसार इनके प्रदेश हिमालय, नेपाल, असम और वर्मा है। इस प्रदेश के निवासी भारतीय साहित्य के किरात है जिनका सामान्यतः रंग गोरा (भूरा) सिर चौड़ा, छोटी चौड़ी नाक, कद नाटे, चेहरा सपाट आँखे (भौंहदार) ठकी सी और कम बालयुक्त सिर होता है।

डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी भी इसे मंगोल जाति से भिन्न नहीं मानते, जो वर्मा, असम, नेपाल, तथा कश्मीर के सीमान्त प्रदेशों में वसी हुई है।[172] 'पेरीप्लस' के अनुसार किरात गंगा के मुहाने के उत्तर के निवासी थे।(स्कॉफ द्वारा अनु0 पृ0 47–62) जबकि टाल्मी बंगाल की खाड़ी (टिपरा के आस–पास– बताता है) डॉ० मोतीचन्द्र[173] इन्हें तिब्बती–वर्मी जाति से सम्बन्धित स्वीकार करते हैं जो खाल पहनते और कन्दमूल पर गुजारा करते तथा हिमालय, बारीसाल या ब्रह्मपुत्र की घाटियों में घूमा करते थे।

डॉ० मजूमदार[174] के अनुसार किरात भारत की प्राचीनतम हिंसक जाति है। जो तिब्बत–वर्मी वर्ग से सम्बन्धित है। जिसका निवास–प्रदेश हिमालय गंगा का उद्‌गम क्षेत्र नेपाल के विस्तृत भू–भाग से भिन्न नहीं है।

---

171 'सिद्धान्तालंकार', सत्यव्रत; भारत की जन जातियाँ तथा संस्थाएँ पृ0–46–49, देहरादून, 1960.

172 'मुकर्जी' डॉ० राधाकुमुद–हिन्दु सभ्यता, पृ0–71, 1958.

173 डॉ0 मोतीचन्द्र–सार्थवाह, पृ0–100 पटना, 1953

174 डॉ० 'मजूमदार– ऐन्सियण्ट इण्डिया, पृ० 337.

डॉ० भगवतशरण उपाध्याय[175] भी इन्हें तिब्बत–वर्मी वर्ग के अन्तर्गत लेकर तिब्बत, लदद्ाख, अस्कर और रूपशु–प्रदेश के निवासी मानते हैं।

वस्तुतः महाकवि कालिदास के अनुसार किरात हिमालय (गंगा के उद्गम क्षेत्र की) शृंखलाओं से पृथक प्रतीत नहीं होते है। यद्यपि (कु0 1/15) मृगया को खोजते उच्चवर्ती प्रदेशों में भी पहुँच जाते होंगे, किन्तु ऐसे हिमाच्छादित भाग पर मानव–निवास दुष्कर है। अतः निचले हिमालय के भाग उसकी तराई तक का प्रदेश किरात भूमि से सम्बन्धित किया जा सकता है।

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल[176] ने यही कारण है हिमालय की तराई (जिसमें नेपाल–भूटान भी सम्मिलित है) को उनका प्रदेश माना है। प्रधानतया नेपाल की वर्तमान लिम्बु या रवा चेपडग आदि जातियाँ किरात जाति से सम्बन्धित की जा सकती हैं। डॉ0 लोधम[177] ने पुराणों के 'राज–किरास' चेपड्ग जाति के समकक्ष माना है। हिमलाय यात्राओं में भाषा सम्बन्धी सूक्ष्म गवेषणा के आधार पर राहुल सांकृत्यायन ने[178] गंगा के पनढर के पूर्वी छोर से सारे नेपाल (कोसी के पूर्व) की राई लिम्बु या रवा जाति को किरात से अभिन्न बताया है। तथ्यतः इस जाति को तिब्वती–वर्मी कहने की अपेक्षा तिब्बती हिमालय कहना उचित प्रतीत होता है, क्योंकि इसका अस्तित्व लद्दाख से आलान तक किसी न किसी जाति के रूप में विद्यमान है इनकी संख्या लगभग एक लाख से अधिक नहीं है, डॉ०

---

175 'उपाध्याय', डॉ० भगवतशरण; कालिदास का भारत पृ0–108 दिल्ली 1963

176 अग्रवाल, डॉ० वासुदेवशरण; भारत सावित्री, पृ0–135, 1957 दिल्ली।

177 डॉ० लोधम–हिमालय गजेटियर वाल्यूम 2, पृ0–36

178 'सांस्कृत्यान' राहुल–हिमालय, परिचय पृ0–42, 1953, इलाहाबाद

सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने[179] किराती या किरन्ती भाषा–भाषी लोगों की संख्या–88000 निर्दिष्ट की है। कवि के अनुसार (कुमारसम्भव 1/15) ये लोग अर्धनग्न धनुष–वाण लिए सिर या कमर में मोर पंख लगाएं घूमा करते थे, शिकार के धंधे में, किन्तु अब ये स्थायी जीवन खेती आदि करके व्यतीत करने लगे हैं, किन्तु फिर भी अपनी प्राचीन प्रवृत्तियों का परित्याग नहीं कर सके हैं।

किन्नर :–

महाभारत (सभार्पव 29/1–5) आदि प्राचीन ग्रन्थों में उनका उल्लेख हुआ है। अर्जुन उत्तर दिग्विजय करने किम्पुरुष वर्ष पहुँचे थे, जो मुख्यतः किन्नरों की निवास भूमि माना जाता है। यह प्रदेश नेपाल हिमालय से भिन्न नहीं हो सकता, किन्तु संकुचित रूप में बाद में कैलास मानसरोवर के पश्चिम का क्षेत्र ही किन्नर प्रदेश कहा जाने लगा। कवि ने किन्नरों का उल्लेख अपनी कृतियों[180] में किया हैं, जिससे ज्ञात होता है, किन्नर की निवास भूमि हिमालय पर्वत पर कैलाश–मानसरोवर क्षेत्र के समीप थी तथा ये 'उत्सव' संकेत पर्वतीय जाति अभिन्न से प्रतीत होते हैं।

एटकिन्सन के मतानुसार[181] वर्तमान किन्नर भूमि हिमालय प्रदेश के कुमाऊँ (कन्नौर) बुशहर, कुलू प्रदेश से भिन्न नहीं है। दूसरे रूप में इसे कुमांयू के पश्चिम की ओर वर्तमान खस, कुवैत आदि जातियों से भी सम्बन्धित माना जा सकता है। (द्रष्टव्य–हिमालय गजेटियर जिल्द 1, पृ0–295)

---

179 'चाटुर्ष्या' डॉ० सुनीतिकुमार–आदिवासियों की भाषाएं–लेख आदिवासी, प्रकाशन विभाग सूचना प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, पृ० 69. दिल्ली, 1959.

180 कुमारसम्भव–1/11,14, 3/33,38, 5/56, 6/39

181 एटकिन्सन–हिमालय गजेटियर, जिल्द, पृ0–296.

प्रो0 जयचन्द्र विद्यालंकार[182] इस जाति के प्रदेश को शतलज की ऊपरी घाटी चन्द्रभागा के उद्‌गम के क्षेत्र को जो आधुनिक कन्नौर से भिन्न नही है, उनकी मूल निवास भूमि स्वीकार करते है।

राहुल ने[183] अपनी यात्राओं से भाषा शास्त्रीय दृष्टि के आधार पर कन्नौर' को ही किन्नर देश सिद्ध किया है, जो तिब्बत (भोट) की सीमा पर सतलज की ऊपरी घाटी में 70 मील लम्बा और प्रायः उतना ही चौड़ा क्षेत्र है, जिसके अन्तर्गत (3800 वर्ग मील क्षेत्र में) रामपुर–वुशहर रियासत थी। यहाँ किन्नरी (कन्नौरी) भाषा ही प्रचलित है। जिसका सर्वाधिक प्रचलित रूप हमस्कंद है।[184]

वस्तुतः यह किन्नरी (कानावरी –कन्नौरी) भाषा सतलज की ऊपरी घाटी शिमला के उ0पू0 टिहरी के उत्तरी क्षेत्र में बोली जाती है।[185] अतः इसी प्रदेश को किन्नर प्रदेश मानना उचित है। वैसे हिमालय की आदिम जाति के रूप में इन्हें ग्रहण किया जाता है, किन्तु अब केवल सतलज की ऊपरी घाटी कनौर (रामपुर वुशहर के आम–पास) के क्षेत्र में ये विद्यमान है कनौरी बोली के आधार पर चाटुर्ज्या ने इनकी सं0 26000 निर्दिष्ट की है।[186] ये लोग नृत्य–गान मेले–तमाशो के शौकीन होते हैं। महाकवि ने जो 'उत्सवसंकेत' जिन पर्वतीय गुणों का उल्लेख (रघुवंश– 4/78) किन्नरों के साथ किया है, वे किन्नरों से

---

182 विद्यालंकार प्रो0–जयचन्द्र–प्रोसीडिंग ऐण्ड ट्रांजेक्सन्स ऑफ दि सिक्स्थ आल इण्डिया ओरियण्टल, क्रान्फ्रेन्स, पृ0–112, पटना, 1930.

183 सांकृत्यायन 'राहुल'–किन्नर देश में पृ0–1,16, तथा 347, प्रयाग

184 वही

185 इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया (ऐटलस) वाल्यूम 26, गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया, 1931

186 'चाटुर्ज्या', डॉ० सुनीति कुमार; आदिवासियों की भाषाएं–लेख आदिवासी प्रकाशन विभाग सूचना प्रसारण मंत्रालयस, भारत सरकार पृ0–68, दिल्ली 1959

भिन्न नहीं जान पड़ते, क्योंकि 'उत्सवसंकेत' इन्हीं किन्नरों का ढीले सामाजिक नियमों के वैवाहिक स्वरूप का संकेत व्यक्त करता है। पार्जिटर[187] ने भी 'उत्सव का अर्थ प्रणय और 'संकेत' को उसकी सिद्धि की चेष्ठा (Gesture) या निमंत्रण अर्थ ग्रहण किया है, जिन्हें डॉ० अग्रवाल ने वर्तमान कनौर क्षेत्र से ही सम्बन्धित होना माना है। (द्रष्टव्य भारत सावित्री, दिल्ली, 1957, पृ0–136) अतः किन्नर भी उसी क्षेत्र के मूल निवासी माने जा सकते हैं। अब ये कृषि –उद्यान फलों का व्यापार, पशु (भेड़–बकरी) पालन करते हैं। अंगूरी मदिरा पी कर देवी या देवता के सामने मस्त होकर नाचते हैं।

गन्धर्व :–

प्राचीन साहित्य[188] में इनका उल्लेख प्राप्त होता है। महाकवि ने अभिज्ञानशाकुन्तलम्, प्रथम अंक (शकुन्तला गन्धर्व सेना समादिष्ट) तथा रघुवंश (5/51, 60,) में गजरूप प्रियाम्वद गन्धर्व का उल्लेख किया है जिसके अनुसार विदित होता है कि गन्धर्व का निवास चैत्ररथ प्रदेश था। (एकांयथौचैत्ररथ प्रदेशान रघु 5/60) जिसका नाम चित्ररथ गन्धर्व राज के नाम पर पड़ा है। यह हिमालय की प्रधान शृखला से ही सम्बन्धित प्रतीत होता है, क्योंकि इसकी पौराणिक स्थिति सुमेरू पर्वत से पूर्व में तथा गन्धमादन (जो सुमेरू के दक्षिण ओर कैलाश के दक्षिण–पश्चिम में स्थिति हैं) के उत्तर पूर्व में निर्दिष्ट की गई है। अतः गन्धर्व प्रदेश हिमालय की बद्रीनाथ श्रेणी से लेकर कैलाश–मानसरोवर तक के क्षेत्र विस्तृत होती है, जो यज्ञों के प्रदेश (कैलाश–मानस) से घनिष्ट संबंधित होना चाहिए।

---

187 मार्कण्डेयपुराण, अनुवाद– पृ0–319

188 वाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड–113/10–11
महाभारत उपायनपर्व–48/23

गन्धर्व जाति यज्ञ–किन्नरों की भाँति मूलतः हिमालय की आदिम जाति है। पुराणों में इसे गान विद्या प्रिय अर्द्ध–देव माना गया है, किन्तु देव (आर्य) जाति भी यहीं की 'सोम' पान करने वाली एक मूल जाति थी।

डॉ० रॉगेयराघव के अनुसार[189] यह गन्धर्व जाति यहाँ के मूल आदिम निवासी थी। जो बाद में आर्यों से घूल–मिल गयी थी तथा देव जाति इन्हीं गन्धर्वों से सोम, क्रय करते थे (पृ0–67)। उनके अनुसार द्रविड़ युग में भी भारत के उत्तर–प्रदेश में अनेक जातियों में यक्ष, गन्धर्व, किन्नर आदि भी थे।

भ्रमवश कतिपय विद्वानों ने गान्धार (कन्दहार वर्तमान अफगानिस्तान) प्रदेश को ही गन्धर्व प्रदेश मानकर इसे सिन्धु नदी के दोनों तट पर विस्तृत स्वीकार किया है, जिनमें सुरेन्द्र नाथ शास्त्री, कनिंघम आदि प्रमुख हैं, जिन्होंने रामायण (उत्तरकाण्ड 113/10–11) के आधार पर गन्धर्वों के देश को सिन्धु के दोनों तटों पर माना है, किन्तु मुख्यतः गर्न्धव प्रदेश हिमालय के कैलाश–मानस क्षेत्र से दूर नहीं माना जा सकता।

यक्षः–

महाकवि ये यक्षों की प्रधान (राजनगरी) अलका कैलाश से अभिन्न स्वीकार की है।[190] हिमालय की राजधानी 'औषधिप्रस्थ' में भी यक्षों का उल्लेख किया है।[191] सामान्यतया इस जाति का प्रदेश कैलास–मानस क्षेत्र के आस–पास विस्तृत प्रतीत होता है। इन यक्षों का राक्षसों से भी रक्त संबंध था। 'यक्ष' और 'रक्ष' दोनों शब्द का धातुमूल एक ही प्रतीत होता है। ये दोनों आदिम जातियाँ स्वच्छन्द इधर–उधर घूमने–फिरने वाली

---

189 डॉ० रांगेयराघव–प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास, भूमिका पृ0 67 (ख)

190 मेघदूत–पू0मे0 7/67

191 कुमार सम्भव 6/39

हिंसक प्रकृति की थी, किन्तु बाद में यक्ष प्रधानतया पर्वतीय जाति के रूप में ग्रहण की जाती है, जिनका मूलतः हिमालय की प्रधान श्रेणी तथा उसके उत्तर कैलाश पं0 क्षेत्र सही संबंध स्थापित करना उचित है।

राक्षसः–

अपनी कृतियों में महाकवि ने इस जाति का विविध नामों से उल्लेख किया है[192] जिनमें निशाचर[193] यातुधान[194] दैत्य[195] दानव[196] के पूर्व मातलि की उक्ति, असुर[197]के बाद रम्भा की उक्ति, नैसत[198] आदि, प्रमुख रूप है, जो इनकी प्रवृत्तियों, वंश, स्थान आदि के अनुसार विशेषणों को व्यक्त करते हैं। इनका देवताओं, यक्षों से रक्त संबंध था, किन्तु उनसे वैर–भाव रखते थे। रामयाण काल में इनका मुख्यतः निवास लंका द्वीप था, किन्तु भारत में भी इनके जनस्थान आदि विविध प्रदेशों में उपनिवेश स्थापित थे। रात्रि को भ्रमण करना, हिंसा, आक्रमण स्त्री अपहरण आदि इनकी प्रवृत्ति थी। मैदानी (जैसे विश्वामित्र के आश्रम के पास) तथा पर्वतीय (हेमकूट, विक्रमों० अंक में) प्रदेशों में भी इनके अस्थायी आवास थे।

विद्याधर :–

---

192 रघुवंश–10/41, 43, 74, 11/18, 26, 29 (विश्वामित्र के आश्रम के आस–पास) 12/28, 42 (जनस्थान) 49, 53, 12/61 (लंका) 82, 13/24 (लंका)

193 रघुवंश–10/45,

194 रघुवंश–12/45

195 रघुवंश–10/66, 12/87

196 अभिज्ञानशाकुन्तलम–7/30

197 विक्रमोवर्शीयम्–1/4 (के बाद रम्भा की उक्ति)

198 रघुवंश–11/2, कुमारसम्भव–2/32

विद्याधरों का भी कवि कृतियों में उल्लेख हुआ है[199] जिसके अनुसार स्पष्ट है कि यह जाति भी हिमालय प्रदेश के मन्दाकिनी नदी (गंगा के उद्गम) क्षेत्र से भिन्न नहीं बसी थी। पुरुरवा की विहार भूमि (गन्धमादन, बद्रीनाथ श्रेणी की उ0पू0 शृंखला) तथा दिलीप की नन्दिनी धेनु–चारण स्थली सब इसी प्रदेश से संबंधित प्रतीत होते हैं। ये लोग पर्याप्त शिक्षित होते थे, क्योंकि कवि ने विद्याधरों, सुन्दरियों द्वारा भोजपत्र पर प्रेम–पत्र लिखने का उल्लेख किया है। (कु0 1/7) गन्धर्वों के समान ये भी गान–विद्या में निष्णात होते थे। अब भी इस क्षेत्र की पर्वतीय जातियाँ नृत्यगान को अपनाये हैं।

नाग :–

इस जाति का उल्लेख[200] महाकवि ने किया है जिसके अनुसार प्रतीत होता है कि इस जाति की कन्यायें बहुत सुन्दर होती थी तथा पर्वतीय द्वीपों या नदियों की शीत जलवायु युक्त भागों में रहा करते थे। पुराणों में इन्हें रमणीय द्वीप का निवासी बताया गया है किन्तु प्रधानतया यह हिमालय की ही एक पर्वतीय जाति थी, जो किरात, किन्नर यहाँ के आदिम निवासियों की भाँति एक पृथक शाखा में थी।

ह्वीलर के अनुसार[201] गढ़वाल में नागो का सम्बन्ध हम नागपुर, उडगपुर, पट्टियों में पाते हैं। सार्वजनिक परम्परा बताती है कि अलकनन्दा उपत्यका में नामों की बस्तियाँ थी। पाण्डु केशर ने शेषनााग की पूजा की जाती है। रतगाँव में भेंकल नाग, तलोर

---

199 रघुवंश–2/60
कुमारसंभव–1/7 ब्रजन्ति विद्याधार सुन्दरीणा0
विक्रमो0 अंक 4/2 के बाद चित्रलेखा–विद्याधर दारिकोदयवतीः 4/23

200 कुमारसम्भव 1/2 नागवधूपभोग्यम्। रघुवंश 16/76, 88, 6/49

201 ह्वीलर–भारत का इतिहास उद्धत–हिमालय परिचय– राहुल सांकृ0 पृ0–501 प्रयाग

में मंगल नाग, भरगाँव में वनपुरनाग जेलम में लीहम्बियाँ नाग, नागनाथ में पुष्कर नाग पूजे जाते हैं। यह हिमालय का भाग नागों से संबंधित है।

राहुल सांकृत्यायन नें अपनी यात्राओं में यहाँ बहुत से ग्रामों में नागों के मन्दिरों के अवशेष प्राप्त किये, जिनमें पुष्कर, तक्षक, बोरचा आदि नाग, नागपुर दसोली पैनखण्डा आदि उनके प्रसिद्ध गढ़ जैसे स्थानों में प्रतिष्ठित है।[202] उरगम (पैनखण्डा में) बेस्वानाग, दसोली के तक्षक नाग की आज भी प्रतिष्ठा है। प्रागार्यकालीन नागों के अन्य अनेक गढ़ भारत के और भागों (राजगृह आदि) में मिलते हैं। सम्भव है, हिमालय के इस भाग में नाग जाति के और भी प्राचीन गढ़ रहे हों।

इन नागों की वेशभूषा शिल्प के आधार पर कुछ ज्ञात होती है[203] केवल अधोवस्त्र धारण करते थे, शेष तन अनावृत। सिर पर घने केश जिस पर फणाकार मुकुट सा बनाए रखते थे। टी0 डब्लू0 डेविड' ने इन्हें Mer-Mens Mer-Maid के समान जलीय (शीत) जलवायु युक्त प्रदेश में आमोद–प्रमोद, विशाल वैभवयुक्त वातावरण में वास करने वाला बताया है[204] किन्तु द्वीपीय प्रदेश नदी घाटियों के अतिरिक्त भारत में यदि शीत जलवायु सुलभ है तो हिमालय पर्वतीय क्षेत्र में। अतः कुमायूँ–गढ़वाल हिमालय का इन्हें मूल निवासी मानना उचित है। वैसे नदियों[205] में भी महाकवि ने कालियनाग को यमुना से तथा कुमुद नाग को सरयू नदी से संबंधित किया है।

---

202 सांकृत्यायन, राहुल–हिमालय परिचय पृ0–51.

203 अजन्ता की 11वीं गुफा में बैठे एक नाग के पृ0–भाग का चित्र

204 टी0 डब्लू डेविड–बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ0–100–101, 1957 कलकत्ता

205 रघुवंश 6/49 तथा 16/76

पुलिन्द :–

आदिम जाति के रूप में इनका उल्लेख प्राचीन साहित्य[206] में हुआ है। जिसके अनुसार पुलिन्दों की गणना म्लेच्छों के साथ की गयी है। अमरकोश में भी उनको म्लेच्छ जाति के अन्तर्गत माना गया है। (भेदाः किरात शवर पुलिन्दा म्लेच्छजातयः) इसी आधार पर कालिदास द्वारा वर्जित पुलिन्दों को टीकाकार मल्लिनाथ ने मलेच्छ ही मान लिया।[207] किन्तु महाभारत मे जिन म्लेच्छ जातियों को गिनाया है उनमें यवन, चीन, कम्बोज, पारसीक, आदि सीमान्त प्रदेशों की बाहरी जातियाँ है, (भीष्मपर्व अध्याय 9) किन्तु किरात, शवर और पुलिन्द आदि तो प्रागैतिहासिक काल से ही भारतीय आदिम जातियों के रूप में रह रही है। महाभारत युद्ध में इन्होंने भाग लिया था। इनका स्वतन्त्र राज्य था, जिसकी राजधानी पुलिन्द नगर थी। अतः इन्हें म्लेच्छ मानना उचित नहीं। सम्भव है, समय–समय पर राष्ट्र की आन्तरिक अशान्ति (लूट–पाट) उत्पन्न करने के कारण अथवा शिकार या वन्य निकृष्ट जीविका ग्रहण करने के कारण म्लेच्छ माना हो।

महाकवि ने इन पुलिन्दों का उल्लेख वन्य (विन्ध्य–मोलेय) जाति के रूप में किया है, जिन्होंने कुशावती से अयोध्या को पुनः राजधानी का रूप देने वाले सम्राट 'कुश' को विन्ध्य श्रेणियों में कन्दमूल, फल–फूल की भेंट देकर उनके दर्शन किये थे (रघुवंश 16/19, 32)। इस आधार पर पुलिन्दों का प्रदेश विन्ध्याचल की मध्य तथा पूर्वी श्रेणियों का ही क्षेत्र प्रतीत होता है। महाकवि बाण ने इस भाग को 'विन्ध्याटवी' कहा है। जिसमें पुलिन्दों का भी वर्णन किया है। वृहत्कथाश्लोक–संग्रह (18 अध्याय 171 श्लोक) में भानुदास

---

206 वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धा 43/11, महाभारत, दिग्विजय, 23/14 उद्वेग–186/80 अरण्यपर्व 186/29, 30 आदि

207 द्रष्टव्य–रघुवंश 16/19,32, संजीवनी टीका, ''पुलिन्दैः म्लेच्छ विशेषैः" वाराणसी 2011

नामक सार्थवाह पर चम्पा से ताम्रलिप्ति तक के मार्ग में पुलिन्दों द्वारा धावा बोलने का उल्लेख है। अतः विन्ध्य की पूर्वी शृंखला भी पुलिन्द प्रदेश से संबंधित उचित प्रतीत होता है।

लेवी के मतानुसार[208] कुलिन्द और पुलिन्द एक ही शब्द है। कुलिंदों के सिक्के हमीरपुर, लुधियाना, सहारनपुर, आदि स्थानों में मिले हैं। इस आधार पर इन्हें शिवालिक श्रेणियों (जमुना–सतलज की ऊपरी घाटी) के प्रदेश से संबंधित किया है।

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल[209] महाभारत में भीमसेन द्वारा दशार्ण विजय करने के पश्चात् उसके कुछ दक्षिण में पुलिन्दों की बस्ती पर छापा मारने के आधार पर इनके प्रदेश को विन्ध्याचल की तलहटी (ऊपरी वेतवा के दोनों तटों में फैले अटवी राज्य) में निर्धारित करते हैं। उन्होंने इन्हें ''विन्ध्य–मौलेय'' (विन्ध्यमालीक)[210] भी संज्ञा दी है, जो विन्ध्य तथा उसके दक्षिण–पूर्व के जंगलों के मूल निवासियों से भिन्न नहीं है।

पार्जीटर[211] ने पुलिन्दों की कई शाखाएँ मानी है जिनके प्रमुख अंग हैं–

1. दक्षिणी शाखाएं
2. पश्चिमी हिमालयी शाखाएं

---

208 लेवी जे0ए0–पृ0–301, 1911

209 'अग्रवाल' डॉ० वासुदेवशरण–भारत सावित्री पृ0–138, दिल्ली, 1957

210 मार्कण्डेयपुराण एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0–1521, इलाहाबाद

211 मार्कण्डेयपुराण अनुवाद पृ0–316, 36, 338

सम्भवतः कालिदास के पुलिन्द दक्षिणी शाखा से अभिन्न हैं। 'डी0सी0 सरकार' के अनुसार[212] ये लोग ऐबोरिजिनत आदिम जाति के है, जो विन्ध्य पर्वत पर रहने वाले पहाड़ियों से भिन्न नहीं है।

ए0पी0 करमर ने[213] पुलिन्दों को एक भारतीय आदिम जाति के अन्तर्गत गोत्र–चिह्न के आधार पर ग्रहण किया है, जो प्रागार्य–भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित रहे हैं।

वस्तुतः कालिदास के पुलिन्द अर्द्धसभ्य पर्वतीय जाति के हैं जो पार्जीटर निर्दिष्ट दक्षिणी शाखा में विन्ध्यप्रदेश के अन्तर्गत ग्रहण किये जा सकते हैं। यदि हिमालयी शाखा से कभी इनका सम्बन्ध रहा हो तो असम हिमालय के दक्षिणी प्रदेश को पुलिन्दों की निवासभूमि माना जा सकता है, क्योंकि दक्षिण असम में हाथी अधिकांशतः होते हैं और ये पुलिन्द उनका शिकार कर हाथी दाँत ग्रहण कर व्यापारियों को बहुमूल्य में बेचते थे। व्यापारियों द्वारा हाथी–दाँत एकत्रित करने के लिए पुलिन्दों को बयाना (ऐडवान्स मनी) देने का उल्लेख साहित्य में हुआ है।[214]

इन पुलिन्दों का चाण्डाल वर्ग के पुण्डों के साथ वैदिक–साहित्य (ऐत0ब्रा0 7/18 संख्या श्रौत सूत्र : 15/26) में उल्लेख हुआ है, जिसके आधार पर यह झारखण्ड, छोटा नागपुर (दक्षिणी विहार) के प्रदेश से भिन्न नहीं है।[215]

---

212 'सरकार' डॉ० डी0सी0–स्टडीज इन द ज्यॉग्राफी ऑफ एशियण्ट ऐण्ड मेडिवल इंडिया पृ0–15, दिल्ली 1960

213 उपर्युक्त वाल्यूम III, नं0–1, पृ0–1–6, मार्च 1966

214 आवश्यक चूर्णि –पृ0–829

215 डॉ० 'त्रिवेदी' देवीसहाय–प्राङमौर्य बिहार–पृ0–22, पटना 1954

अतः विन्ध्य की मध्य श्रेणियों से दक्षिणी बिहार की सीमा तक प्राचीन पुलिन्दों का प्रदेश मानना उचित है। महाकवि कालिदास का वर्णन भी इसी के अनुकूल है। मुख्य वन्य जाति के कारण यह कन्दमूल, फल–फूल, हाथी दाँत, चर्म आदि एकत्र करते हुए शिकार की खोज में दूर–दूर तक एक प्रदेश के वन से दूसरे प्रदेश के वन में घूमा करते थे। अतः सम्भव है नेपाल के मध्य हिमालय या असम में हाथी दाँत एकत्र करनें जाती हो, किन्तु मूलतः इन्हें मध्य पूर्वी विन्ध्यपर्वतीय श्रेणियों के प्रदेश से संबंधित समझना चाहिए।

बनेचर (बनचर) :–

महाकवि ने अपनी कृतियों में बनेचर जाति के भी स्त्री–पुरुषों का उल्लेख किया है, जिसके अनुसार ज्ञात होता है कि ये लोग अपनी स्त्रियों को लेकर प्रायः आजीविका की खोज में एक वन से दूसरे वन को घूमा करते थे। स्त्रियाँ भी स्वच्छन्द रूप से वन विहार किया करती थी। (पूर्व मेंघ, 20) कवि ने इस प्रकार की एक बनचरी का मध्यप्रदेश के सम्भवतः छिन्दबाड़ा जिले के आम्रकूट, वन में कुञ्ज की शीतलता का सेवन करती वर्णित की है।[216] (पूर्व मेंघ, 20)

सम्भव है, अपनी आजीविका से परिभ्रान्त होकर या "आतप से त्राण पाने के लिए घने कुञ्ज में विश्राम करने लगती हो।" वैसे हिमालय पर भी महाकवि ने बनेचर दम्पति को विलासरत चित्रित किया है। मूलरूप में इसे प्राचीन पर्वतीय जाति का ही कहा जा सकता है, जिसका यद्यपि वनवास रूप अस्थायी रहता है, किन्तु फिर भी प्रधानतया राजस्थान, मध्यप्रदेश (विन्ध्य, सतपुड़ा की पूर्वी श्रेणी आम्रकूट) उत्तर प्रदेश के (हिमालय)

---

216 कुमारसम्भव–1/10 'वनेचराणां बनितासखानां'

पर्वतीय क्षेत्रों में रहा करते है, किन्तु ग्रियर्सन के मतानुसार[217] ये पश्चिमी तथा दक्षिण भारत में सर्वत्र दिखाई देते हैं, जो आज की बनजारा जाति से भिन्न नही है वनजारा या बनचर शब्द बनेचर का अपभ्रंश रूप है।

सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार[218] इन्हें जरायम पेशा (अपराधी) जन–जातियों में मानते हैं। ये बजनारे आज भी अपना प्राचीन रूप ग्रहण किये मैदानी या जंगली भाग में कुत्तों को साथ लिए घूमते शिकार करते हैं। राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश के जिलों में अब भी बहुसंख्या में डेरों में आबाद है।

'भगवनदास केला' ने[219] 1941 की देश की जनगणना के अनुसार इनकी संख्या–3854 निर्दिष्ट की है, जिसमें उत्तर प्रदेश को अपेक्षित छोड़ दिया गया है, जबकि यहाँ बनजारे काफी है, किन्तु अब ये 580 से भी अधिक संख्या में विद्यमान हैं, जो प्रायः मांस भोजी है और ग्रामों या नगरों में जाकर जंगली जानवरों की खाल (हिरन आदि) बारहसिंगों के सींग, शहद, गोह का तेल आदि बेचा करते हैं। कंजर–जाति बहुत कुछ इनसे मिलती–जुलती है, किन्तु ये है सर्वथा भिन्न, जिन्हें यहाँ के आदिम जाति के ही रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

निषाद :–

---

217 कुमार सम्भव–1/10 'वनेचारणां वनितासखानां''

218 उद्धत–सिद्धान्तालंकार' सत्यव्रत–भारत की जनजातियाँ (एवं) संस्थाएं, पृ० 106, देहरादून, 1960.

219 'केला' भगवानदास–हमारी आदिम जातियाँ, पृ0–349,, 1950

प्राचीन साहित्य[220] में निषाद जाति का पर्याप्त उल्लेख किया गया है। जिसमें ऐत0ब्रा0 8/11 के अनुसार ये लोग दस्युवर्ग में थे जो व्यापारियों को मारकर गड्ढों में फेंक देते थे। पौराणिक परम्परा (श्रीमद्भागवत, 4/14) इन्हें राजा वेणु के दाहिने अंग से उत्पन्न मानती है। महाकवि ने इनका (रघु0–13/53, 14/52, 70) आदि स्थलों में वर्णन किया है, जिससे ज्ञात होता है कि निषाद जाति का अस्तित्व यहाँ उत्तर–प्रदेश के मैदानी भागों में था। रघु0 13/55 के उल्लेख से स्पष्ट है कि निषाद लोग अपना संगठन (शासन) बनाकर एक मुखिया के संरक्षण में पुरों में निवास करते थे, क्योंकि वनवास काल में राम अयोध्या से निषाद राज्य से होकर वन गये थे।

अतः ज्ञात होता है उस समय ये लोग उत्तर कोशल की दक्षिणी सीमा पर गंगा तट पर बसे हुए थे। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल[221] के मतानुसार निषाद जातियों का आर्यों से सम्मिलन था और उनके निवास क्षेत्र की सीमा तक विस्तृत थी। उस समय इनका प्रमुख धंधा नौका निर्माण करना तथा उससे लोगों को गंगा के आर–पार उतारना था, क्योंकि लक्ष्मण को सीता वनवास के समय निषाद जाति के व्यक्ति ने ही अपनी नौका द्वारा गंगा पार कराया था।[222] ये शिकार करके भी अपनी आजीविका वहन करते थे। जिसमें हिरन आदि पशुओं के अतिरिक्त पक्षियों को भी मारते थे। अतः इन्हें व्याध या वहेलिया के रूप में भी व्यवहृत किया गया है, किन्तु उस समय इन्हें 'गुह कहा जाता था, जो अधम और अस्पृश्य समझते जाते थे। निषाद जाति के लोग सामान्यतया दक्षिणी अंग से नाटे

---

220 ऐतरेयब्राह्मण–8/11, वाल्मीकि रामा0 बाल0 अ0 2/21 अयोध्या 50/33, महाभारत 2/3, 7/44–45 तथा श्रीमद्भागवत 4/14

221 'अग्रवाल' वासुदेवशरण–भारत की मौलिक एकता, पृ0–127, प्रयाग 1954

222 रघुवंश–14/52 ''गंगा निषादाहृतनौ विशेषस्ततार..... ।''

श्यामवर्ण के (कौए से काले) चपटी नाक, पैर छोटे, लाल आँख तथा घुंघराले बाल वाले होते है।[223] आर0के0 मुकर्जी के अनुसार निषाद लोग निम्नजाति के चाण्डाल जैसे अस्पृश्य होते हैं, जिनका प्रमुख धंधा शिकार करना था।[224]

सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के विचार से यद्यपि निषाद 'आस्ट्रिक' वर्ग से भिन्न नहीं है, प्रागार्य काल में बाहर से आने वाली जातियों में से एक है, तथापि आदिम जातियों से संबंधित इन्हें यहाँ के आदिवासी ही मानना उचित है।[225]

सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार[226] ने डॉ० हट्टन; वी0एस0 गुहा; ए0सी0 हैड्डन के मतों के आधार पर निषादों को प्रोटो–आस्ट्रेलायड (आग्नेय या द0पू0) स्वीकार कर आदि द्रविड़ बताया है, जिन्हें वे मध्य प्रदेश, दक्षिण भारत के प्रदेशों से संबंधित मानते हैं। ये चाकलेट जैसे काले रंग के लोग जंगलों में यत्र–तत्र घूमा करते हैं।

यह निषाद जाति भारत की प्रागार्यकालीन आदि जाति है जो सिन्धु घाटी सभ्यता की समकालीन प्रतीत होता है। अतः इन्हें द्रविड़ कहना भी उपयुक्त है, किन्तु सभ्यता तथा संस्कृति की दृष्टि से ये आर्यों से हीन नहीं थे। कालान्तर में अवश्य पतनोन्मुख होकर पनपते रहे और सामान्य हिंसक वृति (शिकार या दस्यु कर्म) अपनाकर या नौका चलाकर अपनी जीविका चलाने लगे। अब ये उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, विहार, आदि प्रदेशों

---

223 कलकत्ता रिव्यु भाग 69 पृ0–349

224 मुकर्जी आर0के–ऐन्सियन्ट इंडिया, पृ0–122, लाहाबाद 1956

225 'चाटुर्ज्या' सुनीतिकुमार–आदिवासी (आदिवासियों की भाषाएं), पृ० 64. प्रकाशन विभाग भारत सरकार, दिल्ली 1959।

226 सिद्धान्तालंकार, सत्यव्रत; भारत की जनजातियाँ तथा संस्थाएं, पृ० 48–49. देहरादून, 1960.

तथा नदियों के तटों पर यत्र–तत्र फैले हुए हैं अथवा मद्रास, श्रावणकोर, उड़ीसा के समुद्रतटों पर मत्स्य या नौका उद्योग में लगे हुए हैं।

शासन और अर्थकेन्द्र नगरों तथा तीर्थ स्थानों का प्रत्यभिज्ञान :–

तक्षशिला भारतभूमि के गर्भ में शयन करनें वाली प्राचीन नगरियों में तक्षशिला का प्रमुख स्थान है। प्राचीन साहित्य[227] में उल्लेख प्राप्त होता है जिससे ज्ञात होता है कि भरत के पुत्र 'तक्ष' के शासन का प्रमुख केन्द्र पूर्व गान्धार था। महाभारत सरकार ने इसको तक्षक नाग से सम्बन्धित किया है जिस पर 'जनमेजय' ने आक्रमण किया था। (महाभारत आदि0 111, 682) जनरल कनिंघम के अनुसार जिसकी सीमाएं उत्तर में उरसा पूर्व में झेलम, दक्षिण में सिंहपुर तथा पश्चिम में सिन्धु नदी थी।[228]

महाकवि कालिदास ने रामायण के अनुसार ही तक्षशिला का उल्लेख किया है। जो भरत के पुत्र तक्ष के राज्य (गान्धार पूर्वी) की केन्द्रीय नगरी थी।[229]

अतः तक्षशिला की स्थिति सिन्धु के पूर्व में स्पष्ट रूप से ज्ञात होती है, क्योंकि रामायण कालीन 'गान्धार' राज्य सिन्धु के दोनों तटों पर विस्तृत था (वाल्मीकि रामा0 उ0का0 101/10) – "सिन्धोरूभ्यतः पार्श्वे देशः परमशोभनः तं रक्षिन्ति गन्धर्वाः।" जिसमें पश्चिमी भाग का राज्य पुष्कल को (पुष्कलावती जिसकी राजधानी थी) दिया गया था।

जनरल कनिंघम प्राचीन तक्षशिला को पुरातत्वीय आधार पर शाहढेरी के अवशेष खण्डहरों से अभिन्न मानते हैं, जो वर्तमान रावलपिण्डी से 12 मील उ0प्र0 में स्थित

---

227 वाल्मीकि रामायण उत्तर का0 101/11 तक्ष–तक्षशिलायां, महाभारत आदिपर्व,–III 682. 632 पाणिनीय अष्टाध्यायी (4/3/97)

228 कनिंघम–एशियन्ट ज्यॉग्राफी ऑफ इण्डिया एडि0 एस0एन0 मजूमदार पृ0–120 कलकत्ता, 1924

229 रघुवंश–15/89 तक्षपुष्कलौ।

है। यहाँ उन्हें अनेक सिक्के, 55 स्तूपों के अवशेष, 9 मन्दिर 28 मोनास्टेरि तथा एक कौप्पर प्लेट जिस पर तक्षशिला लिखा था प्राप्त हुए है।[230]

स्टुअर्ट पिग्गट के अनुसार[231] तक्षशिला नगरी सिकन्दर के आक्रमण काल के लगभग 12 वर्ग मील से कम क्षेत्र में विस्तृत नहीं थी। पुरातत्वीय रूपों के अध्ययन के आधार पर उन्होंने इसे विद्या, कला– शासन, केन्द्र बताकर हूण आक्रमण से ध्वस्त माना है। सर जानमार्शल की खुदाई से ज्ञात होता है कि भीर भाडण्ड के आस–पास इसकी आबादी युक्त स्थिति थी और नगर का आर्थिक औद्योगिक केन्द्र थी।

डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल[232] के विचार से यह पूर्वी गान्धार की राजधानी उद्भाण्ड से 60 मील पूर्व और चारसड्डा से लगभग 120 मी0 पू0 थी, जो प्राचीन उत्तरापथ नामक राजमार्ग से पाटलिपुत्र, मथुरा, शाकल, पुष्कलावती (चार सड्डा) वाह्लीक आदि से मिलाई गयी थी।

डी0सी0 सरकार के मत से[233] तक्षशिला प्राचीन गान्धार की राजधानी थी, जो वर्तमान रावलपिण्डी जिले के अन्तर्गत थी।

तक्षशिला यद्यपि प्राचीनकाल से शिला शासन एवं व्यापार की केन्द्र रही, किन्तु बौद्ध काल में विशेष रूप से व्यापारिक उत्तरी महापथ में स्थित होने के कारण व्यापार

---

230 कनिघंम–ऐशियंट ज्यॉग्राफी ऑफ इण्डिया पृ0–120 कलकत्ता, 1924

231 पिग्गट स्टुअर्ट–सम एशियंट सिटीज ऑफ इण्डिया, पृ0–21, 31 आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, 1945

232 पाणिनि कालीन भारतवर्ष, पृ0–50, सं0 2012 विक्रमीय

233 सरकार डी0सी0–स्टडीज इन दि ज्यॉग्राफी ऑफ दि ऐन्सियंट ऐण्ड मेडिवल इंडिया पृ0–54, दिल्ली, 1960

प्रधान नगरी रही। उस समय यह भारतीय और विदेशी व्यापारियों का मिलन केन्द्र थी। देश के आन्तरिक भागों में श्रावस्ती, बनारस के व्यापारी यहाँ आते थे।[234]

डॉ0 अग्रवाल ने उद्भाण्ड राजतरंगिणी के अनुसार सिन्धु के दाहिने तट पर जो युगनचाङ्क उद्कभाण्ड, पेशावरी में ओहिन्द से अभिन्न है। सिन्धु पार उतारने का एक अच्छा घाट था। अनेक उथल–पुथल (व्यापारिक राजनैतिक, धार्मिक आदि) के प्रभाव से तक्षशिला क्रमशः बसती उजड़ती रही।[235] उसके स्थान पर अब रावलपिण्डी विद्यमान है। अतः रावलपिण्डि के आस–पास ही पुरानी तक्षशिला थी, जिसे कनिंघम के पुरातत्व सम्बन्धी अवशेषों से युक्त 'शाहधेरी से अभिन्न मानना उचित है। यहीं पर रामायण; महाभारत के अनुसार महाकवि कालिदास द्वारा उल्लिखित तक्षशिला है जिसे ग्रीक लोगों ने 'तक्सिला' कहा है। वस्तुतः यह अपने युग की विद्या व्यापार एवं कला में अद्वितीय वैभवशालिनी नगरी रही है।

पुष्कलावती :–

तक्षशिला के साथ इसका भी प्राचीन साहित्य[236] में उल्लेख हुआ है जिसके अनुसार यह तक्ष के भाई (भरत के द्वितीय पुत्र) पुष्कल के शासन (पश्चिमी गान्धार राज्य) का केन्द्र थी। महाकवि ने भी इसी आधार को ग्रहण कर इसका उल्लेख किया है। (रघुवंश 15/89) रघुवंश के (टीकाकार दिनकर मिश्र ने 'इसे पुष्करवी' नाम से व्यवहृत किया।[237]

---

234 डिक्शनरी ऑफ पालि प्रापरनेम्स 1982

235 डॉ० मोतीचन्द्र–सार्थवाह पृ0–10, पटना, 1953

236 वा0 रामा0–उत्तर का0–101/11 वक्ष तक्षशिलायां तु पुष्कलं पुष्कलाते।

237 रघुवंश–15/89, (टीका–दिनकर मिश्र) ''तक्षशिला पुष्कर वत्योर्नगयोः"।

इसी को ग्रीक लेखकों में 'पिकलावटीस (Peukelaotis)'[238] तथा ह्वेनसांग ने ''पोड–से–की–लो–टा टी' (Pou-Sc-Kielota te.) कहा है। तक्षशिला सिन्धु से पूर्व पश्चिम में स्थित होकर समय–समय पर गान्धार को शासन एवं वाणिज्य का केन्द्र बनाती रही। बौद्धकाल 600 ई0पू0 में तक्षशिला, किन्तु सिकन्दर के आक्रमण के समय 325 ई0पू0 में पुष्कलावती (पुष्करावती) ही गान्धार की राजधानी थी, जहाँ यवन आक्रमणकारी मिचनी दर्रे से होकर प्रविष्ट हुए थे।

डॉ0 मोतीचन्द्र के अनुसार[239] यह पुष्करावती (पुष्प की पुष्कलावती) काबुल और स्वात के प्राचीन संगम पर (जो वर्तमान संगम से पूर्व को आगे बढ़कर है।) बसी हुई थी जिसके स्थान पर अब प्राङ्चारसड्डा और राजर गाँव है।

डॉ० वासुदवेशरण[240] भी इसे वर्तमान चारसड्डा से भिन्न नहीं मानते हैं, जो सिन्धु के पश्चिम में ऊपरी गान्धार की राजधानी है।

वस्तुतः प्राचीन पुष्कलावती (पुष्करावती) जिसे यूनानियों ने पिंऊकलावती नाम दिया है, सिन्धु के पश्चिमी प्रदेश के उस भू–भाग से बाहर नहीं स्थित थी, जो काबुल तथा सुवास्तु संगम से संबंधित है। कनिघंम जैसे पुरातत्व वेत्ता ने अपने सर्वेक्षण से इसे इसी स्थान पर चारसड्डा से परिचित कराया है,[241] किन्तु इसी के समीप 'पुकेलावती'[242] नामक

---

238 प्रोक्लेज–मैकक्रिण्डल, टाल्मी–पृ0–115–17, प्रोक्लेज–स्कॉफ पृ0–47

239 डॉ0 मोतीचन्द्र–सार्थवाह, पृ0–9, पटना, 1953

240 अग्रवाल डॉ0 वासुदेवशरण–पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ0–47 सं0 2012

241 कनिंघम–ऐशिएन्ट ज्यॉग्राफी ऑफ द इण्डिया एडीटेड बाई एस0वन० मजूमदार, पृ0–752, कलकत्ता, 1924, एपेडिक्स।

242 रामायण कालीन स्थान परिचय–(वी0एच0 वडेर) श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, पृ0–1964, गीता प्रेस, गोरखपुर।

गाँव भी है, जो प्राचीन रामायण कालीन पुष्कलावती से मिलता–जुलता प्रतीत होता है। अतः वर्तमान चारसड्डा के समीप पुकेलावती (काबुल–स्वात संगम क्षेत्र में) को पुष्कलावती (पुष्करावती) मानना उचित है।

हस्तिनापुर :–

महाभारतकालीन कुरू राज्य की राजधानी थी जिसे 'दुष्यन्त' की सातवीं पीढ़ी के बाद के शासक 'हस्तिन' ने बसाया था। पाणिनि की अष्टाध्यायी में इसका रूप 'हस्तिनापुर' उपलब्ध होता है। (पाणिनीय– अष्टाध्यायी 4/2/101) महाकवि ने काल–गणना दोष से ग्रस्त होकर 'दुष्यन्त' की राजधानी के रूप में इसका उल्लेख किया है।[243] वस्तुतः बहुत समय तक हस्तिनापुर कुरु–जनपद की राजधानी बनी रही। जैनसाहित्य के वर्णित 25,1/2 राज्यों (सम्भवतः मौर्य साम्राज्य की भुक्तियों) में एक कुरू की राजधानी हस्तिनापुर या मयपुर वर्णित है।[244]

वस्तुतः प्राचीन हस्तिनापुर बूढ़ी गंगा के ऊँचे किनारे पर मेरठ के वर्तमान मवाना से छः मील तथा मेरठ से 22 मील उत्तर–पूर्व स्थान से भिन्न नहीं है। अब भी यह स्थान उत्तरी भाग कौरवाँ और दक्षिणी भाग पाण्डवाँ कहलाता है। पड़ोस में कुछ पुराने किलों एवं मन्दिरों के भग्नावशेष प्राप्य है, किन्तु प्रतीत होता है प्राचीन हस्तिनापुर को गंगा की प्रमुख धारा ने बहाकर नष्ट–भ्रष्ट कर दिया है।

'अर्जुन' पौत्र 'परीक्षित्' की चार पीढ़ियों के पश्चात् गंगा की बाढ़ एवं अन्य प्राकृतिक प्रकोपवश निचक्षु ने इसे छोड़कर कौशाम्बी को अपनी राजधानी बनाया था।[245]

---

243 अभिज्ञान शाकु0 4/4 पियम्वदा, हस्तिनापुर गामिनः ऋषयः शब्दायन्तै

244 वृहत् कल्पसूत्र भाष्य–3263

245 मैने देखा 'उपाध्याय' डॉ० भगवतशरण– पृ0–164, इलाहाबाद 1951, तथा संयुक्त प्रान्त का भूगोल, पृ0–42, प्रयाग, 1944

कतिपय विद्वानों ने[246] ब्राह्मणग्रन्थों में वर्णित 'जनमेजय' 'परीक्षित' तथा महाभारत युद्ध के पश्चात अभिमन्यु–पौत्र परीक्षित् के नाम साम्य से उत्पन्न भ्रम के कारण हस्तिनापुर और आसन्दीवत को एक ही स्थान स्वीकार किया है, किन्तु दोनों सर्वथा भिन्न है। आसन्दीवत का कुरूक्षेत्र में और हस्तिनापुर वर्तमान मेरठ जिले में मेरठ से 22 मील उत्तर–पूर्व विजनौर के द0प0 गंगा के दाहिने तट पर स्थित था महाकवि कालिदास के दुष्यन्त इसी हस्तिनापुर से सम्बन्धित थे, जो उनके शासन का केन्द्र था।

मधुपघ्न :–

महाकवि ने रघुवंश 15/15 में शत्रुघ्न के मधूपघ्न पहुँचने का उल्लेख किया है, जिससे ज्ञात होता है कि 'कुम्भीनसी' पुत्र 'लवणासुर' के उत्पात् एवं हिंसापूर्ण शासन का प्रधान केन्द्र थी। यह प्रतीत होता है कि प्राचीन शूरसेन का अधिकांश इस दैत्य के दुःशासन से आतंकित होगा और मधुपघ्न की स्थिति वर्तमान यमुना नदी से दूर नहीं होगी, क्योंकि यमुनातटवासी तपस्वी साधुगण ही इससे विशेष संत्रस्त थे[247] जो इसके शासन केन्द्र नगर मधुपघ्न नगर के समीप ही रहने वाले ज्ञात होते हैं।

इसके अतिरिक्त लवणासुर का वध करने के पश्चात् शत्रुघ्न ने मधुपघ्न नगर से यमुना तट पर जाकर मथुरा (वर्तमान मथुरा) नगरी की स्थापना की।[248] अतः लवणासुर का नगर मधुपघ्न यमुना तट के समीप वर्तमान मथुरा से दूर नहीं माना जा सकता।

---

246 चौधरी, हेमचन्द्र; पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ ऐंसियंट इण्डिया पृ0–23, 1953

247 रघुवंश–15/2 मुनयो यमुनाभाजः शरण्यं शरणार्थिनः।

248 रघुवंश–15/28, उपकूलं सा कालिंद्या–मधुरां मधुराकृतिः।

Grounese महोदय ने इसकी[249] स्थिति मथुरा (27^0 30′ उ० 70^0 41′ पू0) से लगभग 5 मील द0पू0 निर्दिष्ट कर महोली नाम के स्थान से इसे अभिन्न माना है जिसे अनेक दशाओं में उपयुक्त कहा जा सकता है।

मधुरा (मथुरा) :–

वाल्मीकि रामायण (उत्तर 68/3, 70/5, 16) आदि विविध स्थलों में इसका मधुपुर और 'मथुरा' नाम से उल्लेख प्राप्त होता है जिसे शत्रुघ्न ने लवणासुर को मारकर उसकी राजधानी मधुपघ्न के स्थान पर यमुना तट पर बसाया था तथा वहाँ उन्होंने अपने दो पुत्रों में से एक (सुबाहु) को उसका शासक नियुक्त किया था।[250]

जबकि महाकवि कालिदास ने यद्यपि इसी तथ्य को ग्रहण किया है, तथापि अन्तर यह है कि सुबाहु के स्थान पर शत्रुघाती का मधुरा (मथुरा) का शासक बनाया जाना व्यक्त होता है[251] नहीं तो वर्णन में दुष्कमत्व दोष आ जाता है, किन्तु शत्रुघ्न ने 'मधुरा' नयी नगरी बसायी थी इसमें सन्देह तब होने लगता है, जब इन्दुमती स्वयंम्वर में शूरसेन के शासक की प्रशस्ति प्रसंग में कवि ने मथुरा का उल्लेख किया है।[252] जो निःसन्देह शत्रुघ्न से पूर्ववर्तिनी पुरी प्रतीत होती है। इस स्थिति में मथुरा और मधुरा क्या भिन्न–भिन्न नगर थे ? किन्तु यह बहुत कम सम्भव है, क्योंकि यमुना तट से विशेष रूप से सम्बन्धित है। (उपकूलं स कालिन्द्या–रघु0 115/28, कालिन्दकन्या–6/58, साथ ही दोनों की संज्ञा

---

249 एफ0एस0 ग्रोंस–पृ0 32, 54, मथुरा 1874.

250 वाल्मीकि रामा0 उत्तर का0 108/10–सुबाहुर्मधुरा लेभे शत्रुघाती च वैदिशम।

251 रघुवंश–15/36 शत्रुघातिनि सुबाहौ च बहुश्रुते। मधुरा विदिशे सून्वोर्निदधे, पूर्वजोत्सकुः

252 रघुवंश–5/48, कालिन्दकन्या मथुरां गताअपि गंगोर्भिसंसक्त जलेव भाति।

मूलतः एक ही ज्ञात होती है। जन0 कनिंघम के मतानुसार मधुरा और मथुरा अभिन्न ही है। मथुरा, मधुरा का पैशाची रूप है।[253] (Hari V.IV. 3061-3, 308369, XCV. 5243-6) उनके विचार से वर्तमान मथुरा (जो $27^{0}30^{0}$ उ0 077^{0} 41 पूर्व में विद्यमान है) अपने प्राचीन स्थिति क्षेत्र से नदी के प्रवाह से उत्तर को हट कर बस गई है।

मथुरा यमुना के तट पर जिले के मध्य में आगरा–दिल्ली मार्ग पर आगरा से 30 मी0 तथा दिल्ली से 89 मी0 के अन्तर पर स्थित है। जक्शनरूप में अनेक रेलमार्ग यहाँ मिले हुए हैं। पक्की सड़के भी यहाँ से डोंग, भरतपुर, हाथरस वृन्दावन, गोकुल, महावन, शादाबाद आदि को गई है।

स्टुअर्ट पिग्गट महोदय के अनुसार[254] मथुरा की भौगोलिक स्थिति पंजाब के मैदान तथा मध्यभारत की सीमा रेखा पर होने से विशेष महत्व रखती है। उन्होंने प्राचीन मथुरा की खोज वृन्दावन जाने वाली ब्रांच रेलवे (लाइन) व्ही कटिंग के आधार पर प्राप्त की, जिससे कटरा–क्षेत्र की आबादी, प्राकृतिक भूमितल के नीचे की ओर ज्ञात होती है, उनके अनुसार हर्ष के शासन काल में जब ह्वेनसांग ने इसे देखा तो यह नगर लगभग 4 मील घेरे में विस्तृत था तथा यहाँ पांच हिन्दू मन्दिर (जिसमें 1 कटरा क्षेत्र में 'केशवदेव' का मन्दिर था, जिसे औरंगजेब ने नष्ट कर मस्जिद बनवा दी) बने थे। यह शहर कई बार उजड़ा और बसा। प्राचीन भग्नावशेष खुदाई में प्राप्त हुए हैं, जिनका कुछ संग्रह मथुरा संग्रहालय में विद्यमान हैं। खुदाई में बुद्ध भगवान तथा जैन मूर्तियाँ भी मिली है। जहाँ कटरा $804^{0}\times653^{0}$ घेरा है। वहाँ बौद्धकालीन यश विहार बना था। कटरा के दक्षिण में

---

253 कनिंघम–एशियंट ज्यॉग्राफी ऑफ इण्डिया–पृ0 427, कलकत्ता

254 'पिग्गट' स्टुअर्ट–सम ऐन्शिएंट सिटीज ऑफ इंडिया एफ0एस0ए0–पृ0–41, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, 1945.

बल्लभद्कुम्ड के पास भूतेश्वर शिव का मन्दिर तथा कुछ टीले हैं, मथुरा यमुना के रमणीय घाटों के लिए जो प्रासाद जैसे मन्दिरों से युक्त है तथा जिनका संकेत (रघुवंश–6/48 यस्यावरोधस्तन चन्दनाना प्रक्षालना द्वारि विहार काले) में कवि ने किया है, विशेष रूप से महत्वपूर्ण रही है। आज भी यहाँ के लगभग 1, 1/2 मी० विस्तार वाले यमुना तट पर उत्तरकोट के मनसा, दशाश्वमेध, चक्रतीर्थ, वसुदेव घटभरन तथा दक्षिण कोट में अरिमुक्त घाट, विश्रान्ति (विश्राम) घाट, ध्रुव आदि अनेक घाट विद्यमान हैं।

अयोध्या (साकेत) :–

रामायण में अयोध्या (बा० संग 5/6) का विशद वर्णन प्राप्त होता है, जिसके अनुसार सरयू तट पर यह 12 योजन की परिधि में विस्तृत थी। (बाल0 5/7 आयता दश चद्वे योजनानि महापुरी)

महाकवि ने अयोध्या और साकेत दोनों का प्रयोग पर्याय रूप में किया है।[255] जो कोशल (उत्तर कोशल) राज्य के सूर्यवंशी राजाओं का प्रधान शासन केन्द्र (राजधानी) थी। प्रायः सभी हिन्दू तथा जैन ग्रन्थों में इसी तथ्य को ग्रहण कर दोनों नामों का समानार्थ ग्रहण किया है।

एच0एच0 विल्सन ने भी अपनी संस्कृत डिक्शनरी में साकेत को 'दि सिटी आफ अयोध्या' कहा है, किन्तु कतिपय बौद्ध ग्रन्थों[256] में अयोध्या से भिन्न नगर को

---

[255] रघुवंश–अयोध्या 11/93, 14/10, 29, 15/38, 60, 16/25
साकेत 5/31, 13/79, 14/13, 18/36

[256] एल0 फ्रीमर (द्वारा सम्पादित), संयुक्त निकाय, पालिटैक्स्ट सोसाइटी, भाग–3, पृ0–140, 1884–1904

(सम्भवतः सई और गंगा नदियों के बीच में) साकेत स्वीकार किया गया है, क्योंकि उनका पृथक्–पृथक् रूपों में उल्लेख हुआ है।

'रीज डेविड्स' की इस विचारधारा, कि एक ही नगर के संयुक्त दो भाग 'साकेत और अयोध्या' वैसे ही थे जैसे 'लन्दन और वेस्टमिस्टर' अब मिले बसे हैं, को स्वीकार करते हुए राजेन्द्र विहारी पाण्डेय[257] इसे एक ही नगर मानते हैं, जिसका एक भाग अयोध्या सर्वप्रथम (उ0) कोशल का शासन केन्द्र रहा, बाद में इसका स्थान साकेत ने ले लिया। जनरल कनिंघम रामायण के 12 योजन घेरे के स्थान पर उद्यान आदि मिलाकर इसका 12 कोश घेरा उचित मानते हैं। वस्तुतः है भी ऐसा ही, क्योंकि पश्चिम में सूचित गोप्तार (रामा0 का गो प्रस्तर) घाट से लेकर पूर्व में स्थित रामघाट तक का, सरयू तक का अन्तर ठीक छः मील है भी। यदि इसके आस–पास Suburban क्षेत्र को भी ग्रहण कर लें तो भी 12 योजन घेरा होना सम्भव नहीं प्रतीत होता है।

अयोध्या का प्राचीन नगर घाघरा या सरयू नदी के दाहिने किनारे पर फैजाबाद शहर के 4 मी0उ0 पूर्व की ओर स्थिति है। यहाँ तक रेलवे और पक्की सड़क समानान्तररूप से आती है। प्रधान लाइन रानूपाली में छूट जाती है। अयोध्या स्टेशन, नगर से 1, 1/2 मी0 दक्षिण की ओर है, जहाँ से बीच नगर को पक्की सड़की आती है। दक्षिण की ओर दर्शन नगर के पास 'जौनपुर' को जाने वाली सड़क से मिलती है। अयोध्या घाट के पास वर्षा में सरयू को पार करने के लिए नावों का पुल बन जाता है।

---

[257] जे0ए0एस0बी0, वाल्यूम 36–37, पृ0–42–43, अयोध्या (इस्यूड, 1964), 1961–62

अब यहां (नया घाट) पक्का पुल सरकार द्वारा निर्मित होकर कार्य करने लगा है, अयोध्या भारत का यद्यपि अति प्राचीन नगर होने से अनेक राजाओं की राजधानी के रूप में प्रतिष्ठित रहा है, किन्तु 7वीं शती से यह उजाड़ प्राय हो गया था, तब से पवित्र तीर्थ स्थान (वैष्णव मन्दिरों का नगर) के रूप में प्रसिद्ध है। बौद्धकाल में श्रावस्ती के समान बौद्धधर्म तथा व्यापार का भी प्रमुख केन्द्र रहा। इसकी पश्चिमी तथा पूर्वी सीमाएं प्राचीन शहर से संबंधित है। दक्षिण में भरतकुण्ड तक विस्तृत है, किन्तु वर्तमान नगर प्राचीन सीमा के उ0पू0 में लगभग दो मील तक सीमित है तथा चौड़ाई एक मील से भी कम है। अब इसमें आबादी विद्यमान है।

शरावती :–

प्राचीन साहित्य[258] में इसका उल्लेख श्रावस्ती के रूप में उपलब्ध होता है, जिसे बौद्ध साहित्य में श्रावस्ती (सावत्थी) जो तत्कालीन धर्म, व्यापार एवं शासन का प्रमुख केन्द्र होने के कारण प्रचलित महाभागों से[259] सम्बन्धित रही है। कहा जाता है, सूर्यवंशी राजा श्रावस्त ने इसे बसाया था, किन्तु वाल्मीकि रामा0 (उ0का0 108/5) के अनुसार यह राम के पश्चात् उत्तर कोशल में अयोध्या के स्थान पर 'लव' के शासन का केन्द्र बनी थी। महाकवि ने इसी तथ्य को[260] ग्रहण कर इसका उल्लेख किया है।

बी0ए0 स्मिथ–को राप्ती नदी पर नेपालगंज स्टेशन से कुछ दूर नेपाल में बालापूर के पास एक प्राचीन नगरी के ध्वंसावशेष प्राप्त हुए थे, जिन्हें उन्होंने प्राचीन

---

258 वाल्मीकि रामा0 उत्त0का0 108/5 श्रावस्ती पुरीरम्या श्राविता च लवस्य ह।

259 विनयपिटक 1, 220; धम्मपाद; अट्ठकथा, 3, 224.

260 रघुवंश–15/97

श्रावस्ती के अवशेष मान लिए[261], किन्तु डॉ० मोतीचन्द्र के मत से ये श्रावस्ती के भग्नावशेष न होकर ''सेतव्या'' के ज्ञात होते हैं। यह जैन साहित्य में केमड्–अड्ढ की राजधानी कही गई है।[262] उनके मतानुसार श्रावस्ती सहेठ–महेठ से भिन्न नहीं है।[263] (जिला गोंडा 'उ0प्र0) जो प्राचीन काल में प्रसिद्ध व्यापारिक मठ थी। महापंडित राहुल सांकृत्यायन का भी यही मत है।[264]

नन्दलाल डे[265] के अनुसार भी श्रावस्ती (प्राचीन) जो कभी कोशल की राजधानी रही थी। वर्तमान साहेत–माहेत से अभिन्न है जो राप्ती के दक्षिण तट अयोध्या (साकेत) से 58 मील उत्तर में स्थित है।

जन0 कनिंघम की भी खोज ने यह सिद्ध कर दिया है प्राचीन श्रावस्ती अयोध्या के उत्तर में राप्ती के दक्षिणी तट पर स्थित थी जो गोंडा जिले के साहेत–माहेत से भिन्न नहीं है,[266] क्योंकि वहाँ उन्हें एक बुद्ध प्रतिमा और शिलालेख जिस पर श्रावस्ती नाम खुदा था प्राप्त हुए हैं। अतः इसी साहेत–माहेत को प्राचीन 'श्रावस्ती' स्वीकार करना उचित है तथा यह श्रावस्ती महाकवि कालिदास द्वारा प्रयुक्त उस शरावती से भिन्न ही रूप में ग्रहण की गयी थी।[267]

---

261 जे0आर0ए0एस0 पृ0–527, 1889

262 जैन लाइफ इन ऐंशियन्ट इण्डिया एज डिपोक्टर्ड इन के सन्स पृ0–224, बम्बई, 1947

263 डॉ० मोतीचन्द्र–सार्थवाह, पृ0–17 पटना 1953

264 राहुल सांकृत्यायन–पुरातत्व निबन्धावली पृ0–33–35 इलाहाबाद 1929

265 ज्यॉग्राफिकल डिक्शनरी ऑफ एंशियंट ऐण्ड मेडिवल इंडिया–पृ0–87, कलकत्ता 1899

266 कनिंघम–ऐंशियंट ज्यॉग्राफी ऑफ इंडिया एडिटेड– एस0एन0 मजूमदार पृ0–467, कलकत्ता, 1934

267 रघुवंश–15/97

प्रतिष्ठान (प्रतिष्ठानपुर) :–

महाकवि की नाट्यकृति विक्रमोर्वशीयम् में अनेक स्थलों[268] में उल्लिखित है, जो नायक चन्द्रवंशी सम्राट पुरूरवा की राजधानी से संबंधित है। वा0 रामायण में इलपुत्र पुरुरवा (ऐल) के साथ उसकी राजनगरी प्रतिष्ठान का उल्लेख प्राप्त होता है।

ह्वेनसांग ने इसे केसी (क्यासी पुलो) नाम से अभिहित किया है। कुछ लोग इसका नाम हरभूमि पर भी बताते हैं। ई0 1830 में प्राप्त ताम्रलेख के अनुसार ज्ञात होता है कि 11वीं शती (1024 ई0 के आस–पास) तक इसका अस्तित्व रहा और परिहार राजा त्रिलोचनपाल ने कन्नौज छोड़कर इसे अपनी राजधानी बनाया।

नन्दलाल डे के अनुसार[269] प्राचीन प्रतिष्ठानपुर (पुरूरवा राज्य की राजधानी) इलाहाबाद के सामने गंगा की दूसरी ओर वर्तमान झूंसी की स्थिति–क्षेत्र से दूर नहीं था। अब भी प्रायः इसे प्रतिष्ठानपुर कहा जाता है।

डॉ० भगवतशरण उपाध्याय[270] के मत से भी वर्तमान झूंसी प्राचीन प्रतिष्ठानपुर से भिन्न नहीं है।

महाकवि के विक्रमोर्वशीयम् 62/14 स्थल (संगम से दृष्ट पूर्व) तथा 2/10 के पूर्व चित्रलेखा की उक्ति से स्पष्ट ज्ञात होता है कि पुरुरवा राज्य का प्रशासनिक यह

---

[268] विक्रमोर्वशीयम–2/10 के पूर्व चित्रलेखा–एतद्भागवत्याः भागीरथ्याः यमुना संगमें प्रतिष्ठानस्य शिखाभरणाभूतं तस्य राजर्षेर्भवनमः 2/14 संगम दृष्ट पूर्वे० –4/75 के पूर्व; उर्वशी 5/1 के पूर्व विदूषम प्रतिष्ठानस्य।

[269] ज्यॉग्राफिकल डिक्शनरी ऑफ ऐन्सियंट ऐण्ड मेडिवल इंडिया, पृ0–71 कलकत्ता, 1899

[270] उपाध्याय, 'डॉ० भगवतशरण'; कालिदास, का भारत, पृ0–124, काशी 1963

नगर प्रतिष्ठानपुर गंगा–यमुना संगम स्थल से दूर नहीं था। मुसलमानों में कहा जाता है कि वह भूचाल से नष्ट हो गया, नाथपन्थी कहते हैं, गुरू गोरखनाथ और उनके मच्छन्दरनाथ ने अपने क्रोध से यहाँ के राजा और राजधानी को नष्ट कर डाला। प्रतीत होता है कि गंगा की बाढ़ ने इस प्राचीन नगर को अपने प्रबल प्रवाह से प्रभावित कर केवल नामावशेष रूप में छोड़ा। प्रयाग के सामने दूसरी ओर झूँसी के बांये गंगा–तट से प्रस्तर खण्ड भी प्राप्त हुए हैं, जिससे निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वर्तमान नयी झूँसी से आधा मील दक्षिण गंगा के बांए ऊँचे किनारे पर का प्राचीन नगर प्राचीन प्रतिष्ठान (प्रतिष्ठानपुर) से पृथक् नहीं है। झूँसी के प्राचीन स्थानों में कुछ मन्दिर एवं जीर्ण–शीर्ण किले हैं। जनश्रुति के अनुसार एक किला समुद्रगुप्त का बनवाया था। यहाँ से गुप्तकालीन अनेक सिक्के भी प्राप्त हुए हैं। समीप किले के ऊँचे टीले पर प्राचीन कूप है, जिसे समुद्रकूप कहते हैं। अतः यही प्रतिष्ठान से अभिन्न स्थल कहा जा सकता है।

काशी :–

महाकवि के विक्रमोर्वशीयम् में पुरुरवा की परिणीता प्रधान महिषी देवी काशिराज पुत्री[271] कही गई है। बौद्धकाल में 'मगध' और 'कोशल' के साथ काशिराज का भी प्रभाव रहा, किन्तु वह पहले प्रसेनजित से कोशल और अजातशत्रु से मगध के राज्यों से अधिकृत होकर संकुचित रह गया। बौद्ध साहित्य[272] में तत्कालीन 16 महा जनपदों में इसका भी उल्लेख हुआ है, जिसकी राजधानी बनारस (वाराणसी) थी।

अजातशत्रु के समय में काशी–राज्य केवल काशी के आस–पास तक ही संकुचित रह गया। इस प्रकार काशी वर्तमान बनारस से भिन्न नहीं है। यह आज की तरह उस समय भी शिक्षा, व्यापार, धर्मशासन, राजनीति का केन्द्र थी। बौद्ध साहित्य में व्यापारिक नगर के रूप में इसका उल्लेख हुआ है।[273] तक्षशिला से मिथिला या पाटलिपुत्र वाले महाजनपथ में काशी का प्रमुख स्थान था। गंगा के बांये तट पर बसी यह नगरी आज भी अपनी प्राचीन गरिमा के लिए विद्यमान है।

---

271 विक्रमोर्वशीयम –2/1 पूर्वापर–विछुषक0–काशिराज दुहितरमं काशिराज दुहिता :।

272 अंगुत्तरनिकाय–1/213, 4/252, 256/260

273 डिक्शनरी ऑफ पालि प्रापर नेम्स–1, 982

मिथिला (विदेह नगरी)–

महाकवि ने इसका इन दोनों नामों से उल्लेख (रघु0 11/33, 36) किया है। प्राचीन साहित्य[274] में विदेह राज्य की शासन केन्द्र (राजधानी) के रूप में वर्णित हुई है, जहाँ के शासक विदेह या जनक थे ये बौद्ध धर्म के फैलने के पूर्व कुछ पहले हुए थे।

टी0डब्लू0रे0 डैविड[275] के मतानुसार मिथिला (विदेह–नगरी) लिच्छवि राज्य की राजधानी वैशाली के 25 मील उ0प0 में स्थित थी, जो सम्भवतः वर्तमान जनकपुर (दरभंगा जिला) से भिन्न नहीं है।

वृहत कल्पसूत्रभाष्य, 3262 में उल्लिखित जैन साहित्य के 25 1/2 राज्यों में मौर्य साम्राज्य की भुक्तियाँ थी जिनमें एक विदेह था, जिसकी राजधनी मिहिला या मिथिला थी। डॉ० मोतीचन्द्र[276] इसे जनकपुर मानते हैं, जो काशी होकर तक्षशिला जाने वाले महाजनपथ से सम्बन्धित था।

वी0एच0 वडेर के विचार से[277] जनकपुर के पास दक्षिण में विजयनगर के स्थान पर प्राचीन विदेह (तिरहुत क्षेत्र) की मिथिला नगरी थी।

डॉ० भगवतशरण उपाध्याय[278] इसे विहार के दरभंगा जिले का जनकपुर नामक स्थान स्वीकार करते हैं।

---

274 शतपथ ब्राह्मण–11–62, 1 आदि जातक 6/30–38

275 'डेविड' टी0 डब्लू0 टे0–बुद्धिष्ट इंडिया, पृ0–13, कलकत्ता 1957

276 डॉ० मोतीचन्द्र–सार्थवाह, पृ0–72–76, पटना, 1953

277 रामायण कालीन स्थान परिचय, पृ0–1965, श्रीमद्ववाल्मीकीय रामायण (गीता प्रेस) गोरखपुर

278 'उपाध्याय,' भगवतशरण; कालिदासका भारत–पृ0– 124, काशी 1963

उपर्युक्त मतों में प्रायः सभी माननीय कहे जा सकते हैं। टी0डब्लू0रे0 डेविड का विचार अधिक स्पष्ट और सत्य है। वस्तुतः बौद्धकाल का लिच्छवी राज्य प्राचीन विदेह का एक भाग था। अतः उसकी राजधानी मिथिला को जनकपुर से सम्बन्धित करना उचित प्रतीत होता है।

डॉ० मोतीचन्द्र ने इसे जिस तक्षशिला जाने वाले महाजनपद से जुड़ा माना है, वह मिथिला (जनकपुर) को राजगृह विदिशा आदि आन्तरिक नगरों के साथ कपिलवस्तु आदि नेपाल के प्रमुख नगरों में से भी जोड़ता होगा। विश्वामित्र के सिद्धाश्रम, गौतमाश्रम आदि स्थानों को दृष्टि में रखते हुए भी जनकपुर को प्राचीन मिथिला मानना उचित है।

पुष्पपुर :–

महाकवि ने पुष्पपुर[279] का उल्लेख इन्दुमती स्वयंवर प्रसंग में किया है। जिसके अनुसार ज्ञात होता है कि यह मगध–राज्य का शासन केन्द्र था तथा अपने वातायन युक्त सुन्दर प्रासादों (राजभवनों) के लिए प्रसिद्ध था। टीकाकार मल्लिनाथ ने इसे पाटलिपुत्र से अभिन्न स्वीकार किया है (दृष्टव्य संजीवनी टीका 6/24 पाटलिपुत्र) वस्तुतः पाटलिपुत्र के ही प्राचीन नाम पुष्पपुर या कुसुमपुर पाये जाते है। (त्रिकाण्ड शेष), जो यूनानियों के पालिबोथरा (पालिब्रोथा) तथा चीनी लोगों के 'थ–लिन–तो' से अभिन्न है।[280] इस प्रकार पुष्पपुर को ऐतिहासिक मगध की राजधानी पाटलिपुत्र (वर्तमान पटना) मानना उचित है।

---

279 रघुवंश–6/24 प्रसाद वातायानसांश्रिताना ने श्रोत्सवं पुष्पपुराङ्गः गनानाम्

280 'त्रिदेव' डॉ० देवसहाय–प्राड.मौर्य विहार– पृ0–132, पटना 1954

वाडेल के मत से पाटल नरक विशेष है और पाटलिपुत्र का अर्थ है, नरक से उद्धार करने वाला पुत्र।[281] यह पाटलिपुत्र मौर्यकाल से न केवल मगध का ही व्यापार एवं शासन केन्द्र रहा है, वरन् सम्पूर्ण राष्ट्र का भी। इसकी स्थिति गंगा और शोण के मध्य में (व्यापारिक सुरक्षा की दृष्टि से बड़ी ही महत्वपूर्ण थी।) विस्तार की दृष्टि से इसकी लम्बाई 9 मील तथा चौड़ाई 1, 1/2 मील निर्धारित की गई है।[282] यह नगरी चारों ओर लड़की की चहारदीवारी धेरे से सुरक्षित थी, जिसके अवशेष खुदाई में प्राप्त हुए हैं। किले में 64 फाटक तथा 570 गुम्बद (मीनार) बने थे।

वर्तमान पटना के समीप दो मील पश्चिमी भू–भाग में जहां सोन के प्राचीन प्रवाह का उत्तरी भाग है, उसी सोन और गंगा के संगम के समीपस्थ क्षेत्र में यह पाटलिपुत्र (महाकवि कालिदास का पुष्पपुर) स्थित था जो अब पटना वांकीपुर से सम्बन्धित किया जा सकता है।

वस्तुतः यह नगर अपने राजकीय प्रभुत्व, व्यापारिक, धन–वैभव, सांस्कृतिक समृद्धि के लिए विश्व के अनेक देशों में विख्यात रह रहा है। गुप्तयुग में विशेष रूप से व्यापार के क्षेत्र में बढ़ा–चढ़ा था, क्योंकि देश विभिन्न व्यापारिक मार्गों से मिला होने के साथ ही यहाँ राजनीतिक एकच्छत्रता थी। उभयाभिसारिका[283] में तो इसे कुसुमपुर कहकर यहां की माल से खचाखच भरी दुकानों एवं क्रेता–विक्रेता लोगों की भीड़ का भी उल्लेख किया गया है।

---

281 आई0एस0 वाडेल–रिपोर्ट आन एक्सकेशेन ऐट पाटलिपुत्र कलकत्ता 1903

282 दि इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया वाल्युम 2, (हिस्टोरिकल) न्यू एडीशन आक्सफोर्ड पृ0–281–282, 1909.

283 चतुर्भाणी (सम्पादक–श्री एम0आर0के0 कवि तथा श्री एस0के0आर0 शास्त्री) पृ0 2–3 पटना 1922

निःसन्देह 'उभयाभिसारिका' का कुसुमपुर ही कालिदास का पुष्पपुर है जिसे पाटलिपुत्र से भिन्न होने की कोई सम्भावना ही नहीं उठती। इसके साथ ही स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान पटना ने (जो दो मील कुछ पूर्व की ओर बस गया है)। इस ऐतिहासिक सुप्रसिद्ध नगरी पाटलिपुत्र का स्थान ग्रहण कर लिया है। अतः अब पटना का ही स्थूल रूप में महाकवि कालिदास का पुष्पपुर नगर कहना उपयुक्त है।

प्राग्ज्योतिष :–

यह महाभारत में म्लेच्छराज्य के रूप (सभा0 47/12–14 में भारतवर्ष के उ0पू0 में स्थित (सभा0 23/18–19) वर्णित है। राज्य में प्रचुर पर्वत मालाएं विस्तृत होने से इसे शैलान्य भी कहा गया है।[284]

प्रायः प्राग्ज्योतिष को असम से अभिन्न[285] राज्य माना गया है, किन्तु महाकवि कालिदास ने दोनों का पृथक–पृथक उल्लेख किया है। प्रथम प्राग्ज्योतिष का[286] तदुपरान्त कामरूप का 'मार्क कालिन्स' के मतानुसार 'कामरूप और प्राग्ज्योतिष दोनों राज्य पृथक हैं, एक राज्य नहीं, उन्हें पर्याय रूप में भी ग्रहण कर सकते हैं।[287]

---

284 महाभारत–स्त्री०– 23/644

285 अभिधान चिन्तामणी 4/22

286 रघुवंश–4/81–82 धकम्मे तीर्ण लौहित्ये तस्मिन् प्राग्ज्योतिषेश्वर।

287 मार्ककालिन्स–ज्योग्राफिकल डाटा ऑफ रघुवंश ऐण्ड दशकुमारचरितम् पृ0–15

'डी0सी0 सरकार' के विचार से प्राग्ज्योतिष 'कामरूप' के ही अन्तर्गत था जो वर्तमान गोहाटी तथा उसके आस–पास के क्षेत्र से भिन्न नहीं है।[288] 'नन्दलाल डे' इसे वर्तमान गोहाटी से अभिन्न स्वीकार करते है, जो प्राचीन कामरूप की राजधानी थी।[289]

महाकवि के अनुसार रघु ने सर्वप्रथम लौहित्य (ब्रह्मपुत्र को, न कि उसकी सहायक को) नदी को पार कर प्राग्ज्योतिष के स्वामी को कंपाया। यद्यपि आगे कामरूप राज्य का भी उल्लेख किया है (रघुवंश 4/83, 84), किन्तु प्रतीत होता है कि प्राग्ज्योतिष इस कामरूप से भिन्न नहीं था। यह कामरूप के मध्यपूर्वी भाग में उसका शासन केन्द्र ही ज्ञात होता है। यद्यपि महाभारत काल में उसका उल्लेख मिलता है, किन्तु उस समय भी यह कामरूप के शासन से (जिसका राजा भगदत्त था) प्रभावित ही नहीं, वरन् उसके अधीन था। रघु ने सर्वप्रथम कामरूप के अन्य भाग पर आक्रमण करके शक्तिशाली शासन केन्द्र को अकस्मात् ब्रह्मपुत्र पार कर आश्चर्य एवं भयाकान्त कर अधीन कर लिया तो कामरूप राज्य ही उसके प्रभुत्व में आ गया। अतः प्राग्ज्योतिष, ब्रह्मपुत्र, के दक्षिणी भाग में वर्तमान गोहाटी से भिन्न प्रतीत नहीं होता है, जो तत्कालीन कामरूप (वर्तमान असम) की राजधानी रही होगी।

माहिष्मती :–

इस पुराणकालीन प्राचीन नगरी का उल्लेख महाकवि ने अनूप राज्य की राजधानी के रूप में इन्दुमती स्वयंवर प्रसंग[290] में किया है जिससे ज्ञात होता है कि यह

---

288 स्टडीज इन दि ज्याफिग्राकिल ऑफ एन्शियट ऐण्ड मेडिवल इंडिया पृ0–87, दिल्ली 1960

289 ज्योग्राफिकल डिक्शनरी ऑफ ऐंशियंट ऐण्ड मेडिवल इण्डिया पृ0–3

290 रघुवंश–6/63 माहिषमति व प्रनितम्बकाञ्चीम । प्रासाद जालैः जलवेणिरभ्यां रेवाँ।

नर्मदा के वक्र (प्रवाह वाले) तट पर बसी वैसी ही प्रतीत होती थी जैसे कोई सुन्दरी अपने नितम्ब प्रदेश पर करधनी धारण किये हो। यह नर्मदा तटीय नगरी हैहयवंशी राजाओं की प्रधान राजधानी थी, जिसमें कार्तवीर्य का नाम विशेष रूप से संबंधित है। (रघु0 6/30)

के0एम0 मुंशी के मतानुसार[291] (कार्तवीर्य कालीन) माहिष्मती की स्थिति (नर्मदा के तट पर) भृगुकच्छ (वर्तमान भड़ौच) से लगभग 10 मी0 या 12 मी0 पूर्व थी, किन्तु इन दोनों नगरों की स्थिति व्यापारिक तथा राजनैतिक दृष्टि से कम महत्वपूर्ण नहीं थी।

नन्दलाल डे[292] के विचार से हैहयवंशीय अनूप राज्य के शासकों की राजधानी प्राचीन माहिष्मती वर्तमान महेश्वर (महेश) से जो नर्मदा के दाहिने तट पर उज्जैन से 40 मी0 दक्षिण में स्थित है, अभिन्न है।

डॉ० मोतीचन्द्र[293] भी इसे महेसर से भिन्न नहीं मानते, जो खण्डवा और उज्जैन के बीच नर्मदा के उस स्थान पर बसी थी, जहाँ रेल उसको पार करती है। यहीं विन्ध्य श्रेणी का गूजरी घाट और सतपुड़ा का सैन्धव घाट विन्ध्य के दक्षिण जाने के लिए प्राकृतिक मार्ग का काम देते है।

पार्जीटर[294] ने माहिष्मती की समानता नर्मदा के तट पर स्थित 'मान्धाता' से स्वीकार की है। 'डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल' (भारत की मौलिक एकता पृ0 50) तथा 'डॉ०

---

291 'मुन्शी' के0एम0–भगवान परशुराम–प्रस्तावना, पृ0–12–13 दिल्ली 1951

292 डे, नन्दलाल, ज्याग्राफिकल डिक्शनरी ऑफ एन्शियन्ट ऐण्ड मेडिकल इंडिया पृ0–56 कलकत्ता–1899

293 डॉ0 मोतीचन्द्र–सार्थवाह, (वि0रा0प0) 1953

294 पार्जीटर–मारकण्डेय पुराण पृ0–333, नोट0 जे0आर0ए0एस0 पृ0–445–446, 1910

भगवतशरण उपाध्याय' (कालिदास का भारत पृ0–126, काशी, 1963) आदि विद्वान इससे सहमत हैं।

के0एम0 मुन्शी ने माहिष्मती की (महेश्वर) भृगकच्छ से जो दूरी निर्दिष्ट की है, वह बहुत कम प्रतीत होती है। दोनों का अन्तर 100 मी0 से कम नहीं प्रतीत होता है। मान्धाता को माहिष्मती भ्रान्त आधारोवंश, पार्जीटर ने सिद्ध किया है, जिससे निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि यह प्राचीन अनूप देश की राजधानी थी।

जैसा कि मुंशी ने अनूप देश की इस राजधानी माहिष्मती को भृगुकच्छ के समीप बताया है, किन्तु इतने निकटस्थ न होते हुए भी यह प्राचीन द0प0 वाणिज्य पथ की प्रधान नगरी थी, जो कौशाम्बी होकर गुजरता था।[295] डॉ0 मोतीचन्द्र ने जो इसकी स्थिति माहेश्वर अभिन्न मानकर व्यक्त की है, वह अधिक उपयुक्त और माननीय प्रतीत होती है, क्योंकि अब भी वाणिज्यिक (स्थलीय) मार्ग की दृष्टि से यह उससे दूर नहीं है। पुरात्वशास्त्री एच0डी0 संकालिया के अनुसार महत्वपूर्ण स्थिति की दृष्टि से भी यह प्राचीन राज्य नगरी नर्मदा के उत्तरी तट–स्थित नीमाड़ जिला अन्तर्गत[296] महेश्वर से अभिन्न ज्ञात होती है। अतः महाकवि कालिदास भी माहिष्मती नगरी को नर्मदा के दाहिने तट पर इन्दौर से लगभग 40 मील द0प0 महेश्वर (महेसर) से अभिन्न मानना उचित है।

उज्जयिनी (विशाला) :–

---

[295] सुत्तनिपात, 1010–13

[296] जे0आई0एच0 वाल्युम 41 भाग–3, पृ0–631–48, दिस0 1963

प्राचीन पवित्र एवं प्रसिद्ध नगरियों में उज्जयिनी या विशाला का सम्पन्नता में साक्षात् स्वर्ग का एक 'कान्तिमखण्ड रूप में ही इसे देखा (पू0 मे0 32)। यहाँ के महाकालेश्वर मन्दिर, शिप्रा तटवर्ती उद्यान, वैभवमय विपणि– वीथियों, प्रासाद आदि का सुन्दर वर्णन कर महाकवि ने स्पष्टतः उज्जयिनी के धार्मिक, व्यापारिक तथा राजनीतिक महत्व का संकेत किया है। कवि ने अपने उपास्य देव भगवान शंकर की सम्पन्न होने वाली पूजा का साथ ही वहाँ की समृद्धि का जिस तल्लीनता के साथ चित्र खींचा है, उसके आधार पर कहा जा सकता है कि इस नगरी से उनका घनिष्ट सम्बन्ध रहा होगा। यह विशाला या उज्जयिनी वर्तमान उज्जैन से भिन्न नहीं है। गुप्तकाल में उज्जयिनी प्रधान रूप में वाणिज्य एवं राजनीति का केन्द्र रही है। पद्मप्राभृतकम[297] में उज्जैन के वाणिज्य संबंधी माल से भरे बाजारों का उल्लेख प्राप्त होता है। दक्षिणी भारत (पैठन) से श्रावस्ती से जाने वाले स्थलीय मार्ग में स्थित यह व्यापार प्रधान नगर था।

(पेरीप्लस आफ दि ऐरिथ्रियन सी) के अनुसार 'वैरिगाजा' से आयातित सम्पूर्ण वस्तुओं का केन्द्र रूप रहकर यह गंगा तटवर्ती राजनगरों को वितरित करता था।[298]

कनिंघम के अनुसार यह ह्वेनसांग की 'V-She-na' से अभिन्न है, 30li, या 5 मी0 की परिधि के अन्तर्गत बसी हुई थी।[299] अब इसकी स्थिति शिप्रा तट पर (अक्षांश–$23^0$11 उ0 $75^0$47 पूर्व देशान्तर) निर्धारित की जा सकती है। इसकी वर्तमान स्थिति तथा इसके आस–पास को देखते हुए कहा जा सकता है कि प्राचीन उज्जयिनी का अस्तित्व

---

297 श्री एम0आर0के0 कवि तथा एस0के0आर0 शास्त्री द्वारा सम्पादित। चतुर्भाणि पृ0–4–5, पटना 1922

298 स्कॉफ द्वारा अनुवादित, पृ० 42.

299 कनिंघम–एस0एन0 मजूमदार ऐंशियंट ज्यॉग्राफी ऑफ इंडिया पृ0–560 कलकत्ता, 1924

वर्तमान नगर के समीप ही 2मी0 उत्तर को था। प्रतीत होता है, शिप्रा की भयंकर बाढ़ों, भूचालों, सामयिक शासन संबंधी हलचलों आदि (आक्रमणों) ने इस प्राचीन नगरी को ध्वस्त करने में कुछ कसर नहीं रखी, किन्तु इसका अस्तित्व इस भारतीय भूमि के उठाने में वे असफल ही रही और अब उज्जैन के रूप मे ंइसके शिप्रा तट के, 'महाकालेश्वर' मन्दिर, सुन्दर बाजारों आदि के दर्शन किये जा सकते हैं।

दशपुर :–

महाकवि ने मेघमार्ग में देवगिरि (स्कन्द की निवास भूमि) के अनुसार चर्मण्वती (चम्बल) नदी राजा रन्तिदेव के साथ दशपुर का भी उल्लेख किया है।[300] जिसके आधार पर प्रतीत होता है कि यह नगर चर्मण्वती के तट पर रन्तिदेव के शासन का केन्द्र था। यहाँ की नगर बधुओं का मेघ को अधिक कौतूहलपूर्वक विस्फारित (सकाम) दृष्टि से देखने का भी कवि ने उल्लेख किया है (दश्पुरबुध तेत्र कौतुहत्यनाम)। रन्तिदेव का राज्य उत्तर मालवा (अवन्ति के उत्तर के) भाग में भिन्न नहीं कहा जा सकता, जिसकी राजधानी दशपुर अथवा दशौर (दशपुर–दसौर) थी, जो मालवा के वर्तमान मन्दसौर से अभिन्न प्रतीत होता है।

दशपुर का मौर्येत्तर काल (द्वितीय शती ई0) में कम धार्मिक महत्व नहीं था, जो नासिक गुहा के शिलालेख से व्यक्त होता है जिससे उषवदात (नहपान क्षत्रप के दामाद) द्वारा ब्राह्मणों को धर्मार्थ प्रभास उज्जयिनी आदि पवित्र स्थानों के साथ दशपुर को भी दान देने का उल्लेख है।[301] आवश्यक चुर्णि की एक कथा में भी इस तथ्य का उल्लेख प्राप्त

---

300 मेघदूत–(पूर्व मेघ/51) तामुर्तीर्य ब्रज परिक्षत च पाश्रीकुर्वन्दशपुरवधुनेत्र कौतुह्ल्यनायम्।

301 डॉ० आर0के0 मुकर्जी–ऐंशयंट इडिया, पृ0–202 इलाहाबाद 1956

होता हैं। गुप्तकाल में भी इसका व्यापारिक महत्व विशेष रूप से बढ़ा था। द0प0 व्यापारिक स्थलीय मार्ग से 'उज्जयिनी', 'मथुरा' आदि नगरों से जुड़ा हुआ था। कुमारगुप्त प्रथम के समय के मन्दसौर के लेख[302] से ज्ञात होता है कि लाट् देश से आयात रेश्मी वस्त्र के बुनकरों की यहाँ एक श्रेणी थी, जिसके सभी सदस्य अपने व्यवसाय पर अभिमान करते थे।

डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी के मत से[303] पश्चिमी मालवा प्रदेश के मन्दसोर को प्राचीन दशपुर कहा जा सकता है।

नन्दलाल डे0 इसकी स्थिति मालवा में चम्बल के किनारे बसी से लगभग 2 या 3 मील मन्दसोर से अभिन्न मानते हैं।[304] मन्दसौर की स्थिति के साथ ही वहाँ के कतिपय पुरावशेषों को जिनमें नदी के तट पर लगभग 1000 वर्ष प्राचीन विशाल मन्दिर का शिवलिंग लगभग 1400 वर्ष पुराने महाराज यशोधर्मा द्वारा निर्मित 30 फुट ऊँचा एक स्तूप जिसमें छठीं शताब्दी में विदेशी आक्रान्त मिहिरकुल के साथ उन्होंने युद्ध पर पराजित किया था, यह विजय स्पष्ट पाली–भाषा में लिखी है, प्राचीन सूर्य मंदिर आदि के अवशेष प्रमुख हैं, दृष्टि में रखते हुए कहा जा सकता है कि यह नगर धार्मिक व्यापारिक एवं प्राचीन राजनीतिक क्षेत्र में कम महत्वपूर्ण नहीं था और प्राचीन दशपुर (दशोर) से अभिन्न स्थिति नहीं रखता है। यहाँ के ब्राह्मण आज भी दसौरी था दसौरा नाम से प्रसिद्ध है। यह दसौर इसी दशपुर प्राचीन नाम का अपभ्रंश है। अब दसोर के स्थान पर मन्दसोर होकर बसा है। जो रतलाम जंक्शन से 50 मी0 अजमेर–खण्डवा लाइन पर 126 मी0 दूर है।

---

302 फ्लीट–गुप्तइन्सक्रिप्शन्स सं0–18, पृ0–86 से

303 मुकर्जी डॉ० राधाकुमुद–ऐशियन्ट इंडिया पृ0–223, इलाहाबाद

304 ज्योग्राफिकल डिक्शनरी ऑफ एंशियन्ट ऐण्ड मेडिवल इंडिया पृ0–53 कलकत्ता–1899

डॉ० कैलाशनाथ[305] इसे महाकवि से घनिष्ठ (जन्म–भूमि) रूप में सम्बन्धित करते हैं, किन्तु ऐसा कहना आधार शून्य है, आज यह विकाशील हो रहा है।

विदिशा :–

यह प्राचीनकाल से राजनीतिक एवं व्यापारिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण नगरी थी। वाल्मीकि रामयाण[306] में शत्रुघ्न के पुत्र शत्रुघाती को विदिशा के शासक बनाये जाने का उल्लेख है।

महाकवि कालिदास ने विदिशा का उल्लेख विख्यात राजधानी के रूप में अपनी कृतियों में किया है।[307] जिसके अनुसार ज्ञात होता है कि यह प्राचीन 'दशार्ण' राज्य की ही नहीं, अपितु शुंगकाल में 'पाटलिपुत्र' के अतिरिक्त अग्निमित्र की राजधानी थी। केवल दशार्ण की ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण मालवा की भी यह राजधानी रह चुकी थी। (कादम्बरी बाण पूर्वार्द्ध) अतः मुख्यतः राजधानी के रूप में (पूर्व मेघ 26) इसे कहा है।

महाकवि के अनुसार विदिशा न केवल शासन (राजनीति) की दृष्टि से वरन् व्यापार, कला–कौशल के लिए भी दिक्दिगन्त में विख्यात थी तथा वाणिज्य की केन्द्र रूप इस नगरी में देश के विविध राज्यों के सार्थवाह व्यापार के लिए आया करते थे जिनमें विदर्भ से विदिशा की ओर जाने वाले उसे सार्थ–दल का उल्लेख किया है। जिसे जंगली मार्ग में दस्युओं ने लूटने के लिए आक्रमण किया था।[308] इस दक्षिणी मार्ग के अतिरिक्त

---

305 भारत (रविवासरीय सा० परिशिष्ट), पृ० 1, मन्दोसर 1966, 26 जून

306 वाल्मीकि रामायण – उत्तरकाण्ड 108/10–11, शत्रुघाती च वैदिशम्

307 मेघदूत (पूर्वमेघ)– 26 तेषां दिक्षु प्रथितातिदिक्षा लक्षणाम् राजधानीम्; मालविका 5/1, विदिशात्रांरोधाने 5/10 के परिव्राजिका।

308 मालविकाग्निमित्र्–5/10 तथा उसके पूर्व परिव्रजिका–'पार्थकमार्थ) विदिशागामिनम

प्रतिष्ठान (पैठन) से माहिष्मति (महेसर) उज्जैन, होते हुए कौशाम्बी जाने वाले बौद्ध कालीन मार्ग से भी विदिशा पृथक नहीं थी।[309] गुप्तकाल में यद्यपि इसका राजनैतिक महत्व उतना नहीं रहा, किन्तु व्यापार अर्थ आर्थिक क्षेत्र में अत्यधिक महत्वशालिनी रही थी।

दशार्ण राज्य वर्तमान वेत्रवती (वेतवा) या दशार्ण (धसान) नदी के आस–पास वर्तमान मालवा के पूर्वी भाग से भिन्न नहीं है, जिसमें कवि ने विदिशा और वेत्रवती का 'पूर्वमेघ' में उल्लेख किया है। अतः विदिशा की स्थिति बेत्रवती (वेतवा) के तट पर वर्तमान भेलसा (भिल्सा) से भिन्न नहीं निर्धारित की जा सकती, जो मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल से लगभग 26 मील उ0पू0 में स्थित है। यह पुरानी ग्वालियर रियासत के अन्तर्गत भी रही है। यहाँ से समीप में ही लगभग 3 या 4 मील दूर उदयगिरि की पहाड़ियाँ है। जहाँ पुरातत्वशास्त्र से सम्बन्धित भग्नावशेष देखे जा सकते हैं। इसे देखकर यह संशय होने लगता है कि कभी यहाँ नगर का प्राचीन आवास रहा होगा, किन्तु विदिशा की स्थिति वेतवा तट पर भिलसा के स्थान पर ही मानना उचित है तथा उदयगिरि की पहाड़ियों को नीचगिरि (जहाँ के शिला वेश्मों में विलासी नागर युवक वाराङ्नाओं के साथ अपने उद्दाम यौवन का सुख लूटते थे, (पू0में0 25) से संबंधित किया जा सकता है।

कुशावती :–

कुशावती का उल्लेख रामायण[310] में किया गया है जिसके अनुसार कुश की राजधानी के रूप में इसकी स्थिति विन्ध्यपर्वत श्रृंखलाओं में ही ज्ञात होती है तथा विन्ध्य

---

309 डिक्शनरी ऑफ पालि प्रापर नेम्स बावर–1.

310 वाल्मीकि रामायण, उत्तर का0 188/4 कुशस्थनगरी रम्या विन्ध्यपर्वतरोधासि ।
कुशावती नाम्ना सा कृता रामेणधीमता ।।

पर्वतीय भाग कोशल[311] के दक्षिणी भाग के ही अन्तर्गत आता था, जिसके शासक 'कुश' बनाये गये थे। अतः रामायण के अनुसार कुशावती की स्थिति 'द0 कोशल' में विन्ध्य पर्वत पर ही थी। महाकवि कालिदास ने इसी आधार पर स्पष्ट रूप से कुश की इस राजनगरी की स्थिति को विन्ध्य श्रेणियों के अन्तर्गत निर्दिष्ट किया है। जो यहाँ से कुश के अयोध्या को सैन्य अभियान मार्ग[312] से स्पष्ट ज्ञात होती है। कुशावती से 'कुश' सेना सहित विन्ध्य श्रेणियों वाले मार्ग से चले जिसमें विन्ध्य पर्वत के मध्य पूर्व भाग में रहने वाले प्राचीन पुलिन्द जाति के लोग उपहार सामग्रियों के साथ उनसे मिले थे। 'रेवा' (नर्मदा प्रवाह) 'रव' के साथ कवि ने 'कुश' की सेना के रव की समानता दिखाकर स्पष्टतः सूचित किया है, कि 'कुश' नर्मदा की ऊपरी (प्रपाती घाटी को पार कर आये होंगे, जहाँ से, कुशावती अधिक दूर स्थित नहीं प्रतीत होती है। वैसे उनके उल्लेख (रघुवंश 15/97 तथा 16/25) से तो यह व्यक्त नहीं होता है, किन्तु आगे 'कुश' की यात्रा से स्पष्ट हो जाता है कि विन्ध्य की मध्य पू0 श्रेणियों में नर्मदा की ऊपरी घाटी में यह स्थिति थी।

श्री चन्द्रबली पाण्डेय[313] कुशावती को 'कुशस्थली' कहकर उज्जयिनी से इसकी संगति बैठाते हैं, क्योंकि उन्होंने इतिहास के धुँधले प्रकाश में उज्जयिनी को 'कुशस्थली' रूप में देखे जाने का अनुभव किया है, किन्तु यह खेद का विषय है। कुश के कुशावती से अयोध्या के जिस प्रमाण की उन्होंने संगति बैठाई है, वह नहीं बैठती है। कारण

---

311 वाल्मीकि रामा0 उ0का०–107/17, कौशलेषु कुम्बा वीरमुत्तरेषु तथा लवम् ।

312 रघुवंश–16/31, मार्गषिणीसा कटकान्तरेषु वैन्ध्यषु सेना वहुधा विभिन्ना चकार रेवेव महाविराणवद्ध प्रतिश्रुति गुहामुखानि।
रघुवंश 16/32 सा धातुभेदाकणयाननेमि पश्यन्पुलिन्दै रूप पादितानी ।
व्यलंधयद्विन्ध्यमुययानानि।

313 पाण्डेय चन्द्रबली–कालिदास, पृ0–74–75, चौखम्भा संस्कृत सीरीज वाराणसी 2007,

स्पष्ट है 'कुश' द्वारा यद्यपि कवि ने प्रत्यक्षरूप से नर्मदा पार किया जाना वर्णित नहीं किया है, तथापि सेना के 'रव' से नर्मदा प्रपाती प्रवाह 'रव' की समानता से उसकी समीपता स्वतः स्पष्ट हो जाती है। यदि उज्जयिनी को कुशावती थोड़ी देर के लिए मान भी ले तो सेना वहाँ से उत्तर या उत्तर पूर्व को प्रस्थान कर चुकी थी। जिसका (रघुवंश–16/25 से 16/30 में) वर्णन किया गया है। अतः इतनी अधिक दूरी से रेवा के महारव को उपमान रूप से भी प्रस्तुत करना क्या ठीक है, क्योंकि उज्जयिनी से कम से कम 50 मील दूर दक्षिण में नर्मदा है और उज्जयिनी से उत्तर या उत्तर पूर्व को सेना प्रस्थान कर चुकी थी, तो फिर सेना के 'रव' को रेवा के महारव की समानता दिखाने का कौन तुक बैठता है।

सबसे मुख्य बात यह है कि उज्जयिनी कभी 'दक्षिण कोशल' के अन्तर्गत या उससे किसी प्रकार सम्बन्धित नहीं रही है। वाल्मीकि रामायण में स्पष्ट रूप से कुश का कोशल के दक्षिणी भाग पर शासन करने का उल्लेख है (उत्तर–107/17) विन्ध्य की म0 पूर्वी श्रेणियों का तथा उसके दक्षिण का भाग दक्षिण कोशल इसके अन्तर्गत था। जिसका प्रमाण प्राचीन साहित्यिक सामग्री[314] से प्राप्त होता है। ज0 कनिंघम के मतानुसार[315] कुश के शासन प्रदेश (द0) कोशल की राजधानी कुशावती या कुशस्थली की स्थिति विन्ध्य पर्वत की तेज (Steep) ढाल वाली तराई में थी।

कोशल को बरार–गोंडवाना क्षेत्र से अभिन्न मानकर उसकी राजधानी का निश्चय करना कठिन है। ह्वेनसांग ने अपनी यात्रा में इसका यद्यपि नाम निर्दिष्ट नहीं किया, किन्तु इसका घेरा उसने लगभग 7 मील (40li) अवश्य बताया है। चाँदा इलिचपुर,

---

314 रत्नावली नाटिका–(श्री हर्षदेव) अंक 4
विष्णु पुराण– (एच0एल0 विल्सन) 2, 172

315 कनिघंम–एशियण्ट ज्यॉग्राफी ऑफ इंडिया–एडिसन ''एस0एन0 मजूमदार पृ0–516 कलकत्ता 1924

अमरावती, नागपुर में से किसी–किसी की सम्भावना, कुशावती होने की की जा सकती है, किन्तु ह्वेनसांग के निर्दिष्ट घेरे तथा कतिपय अवशेषों के आधार पर कनिंघम ने चाँदा को ही इसकी राजधानी पूर्वरूप में (कुशावती) मानने में स्वीकृति व्यक्त की है। चाँदा के आस–पास चहारदिवारी 6 मील घेरे की है भी और इसके साथ ही यहाँ किला भी है, किन्तु फिर भी कुशावती को निश्चित रूप से चाँदा के स्थान पर निर्धारित करना उचित नहीं प्रतीत होता है। अतः अब भी महाकवि की यह नगरी प्रत्यभिज्ञान की पहुँच के परे हैं।

कुण्डिनपुर :–

प्राचीन विदर्भ राज्य की इस राजधानी का प्राचीन साहित्य[316] में उल्लेख प्राप्त हुआ है। महाभारत में वैदर्भी, दमयन्ती द्वारा अयोध्या (ऋतुपर्ण की राजधानी जहाँ 'वाहुक' नाम के सारथी रूप में नल कार्य कर रहे थे) से कुण्डिनपुर का अन्तर योजना सत (अर्थात लगभग 800 मील) निर्धारित किया गया है।[317] वर्तमान कुण्डिनपुर दक्षिण भारत के स्थलीय वक्रमार्ग की भी दृष्टि से अयोध्या लगभग 500 मील से कम नहीं है।

महाकवि ने कुण्डिनपुर का उल्लेख इन्दुमती–स्वयंवर प्रसंग[318] में किया है जो उस समय भी विदर्भ की राजधानी थी।

---

316 महाभारत वनपर्व नालोपाख्यान, अध्याय 60, (कुडिन या तुमहःसि) श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध, अध्याय 53

317 महाभारत वनपर्व, नालोपाख्यान–'समर्थो योजन–शतं गन्तुमश्वैर्नशधिप।

318 रघुवंश–7/33 'तस्माद पावर्तकुण्डिनैशडः ।

डॉ0 भगवतशरण उपाध्याय[319] इसे बरार के अमरावती से 40 मील दूर कुन्दपुर से भिन्न नहीं मानते है।

वस्तुतः प्राचीन विदर्भ राज्य के विस्तार की दृष्टि से वर्तमान अमरावती से 40 मी० पूर्व स्थित इस कुन्दपुर को ही कवि का कुण्डिनपुर मानना उचित प्रतीत होता है, जो उसकी राजधानी के रूप में प्राचीन साहित्य में वर्णित हुआ है। वर्धा नदी अपने प्रवाह से इसे विशेष समृद्धशाली रूप प्रदान करती होगी।

उरगपुर :–

महाकवि कालिदास ने इन्दुमती स्वयंवर में पाण्ड्य–नरेश की प्रशस्ति के साथ इसका उल्लेख किया है।[320] जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि उस समय मदुरा के स्थान पर 'उरगपुर' ही पाण्ड्य राज्य का शासन केन्द्र था।

रघुवंश के टीकाकारों में हेमाद्रि एवं मल्लिनाथ ने इसे नागपुर बताया है।[321] नन्दलाल डे भी इसे नागपट्टम् से परिचित कराते है।[322] किन्तु इनका यह नागपुर सम्बन्धी दृष्टिकोण भ्रमपूर्ण प्रतीत होता है, क्योंकि नागपुर या नागपट्टम् जो मद्रास से 160 मील दक्षिण में स्थित है, शासन की दृष्टि में पाण्ड्य वंशीय इतिहास में अपना विशेष स्थान नहीं प्राप्त कर सका।

---

319 उपाध्याय भगवतशरण–कालिदास का भारत–पृ0–117, काशी 1963

320 रघुवंश–6/59 अथोरगारव्यस्य पुरस्यनाथम।

321 दृष्टव्य टीका, हेमाद्रि–नागपुरस्य नाथम् । मल्लिनाथ ''पाण्ड्यदेशे कान्य–कुब्जातीरवर्ति नागपुरस्य''।

322 ज्योग्राफिकल डिक्शनरी ऑफ ऐंशियन्ट ऐण्ड मेडिवल इंडिया– पृ0 67

'सी0बी0 वैद्य' का विचार है कि 'करिकाल चोल', एवं उसके पूर्व पाण्ड्य की राजधानी 'उरगपुर' ही थी जिसे प्रथम शती ई0 में उसने पाण्ड्य पर प्रभुत्व जमाकर इस राजधानी के स्थान पर 'कावेरी पत्तनम' को नयी राजधानी बनाया। उनके अनुसार यह प्रथम शती0 ई0 के पूर्व पाण्ड्य की राजधानी उरगपुर वर्तमान 'उरैयूर'[323] से भिन्न नहीं है, जो वर्तमान मद्रास के त्रिचनापल्ली जिले में स्थिति है, किन्तु 300 से 500 ई0 के मध्य पाण्ड्य राज्य की शक्ति मधुरा में केन्द्रित रही, तथा इसके पुनरुत्थान को दृष्टि में रखकर कतिपय विद्वान[324] इसे ही कवि के उरगपुर से अभिन्न मानते हैं, क्योंकि इसका तमिल नाम 'अलवाय' अर्थात नाग या उरग है, किन्तु कालिदास का कोई ऐसा पक्षपात तो था नहीं कि उन्होंने पूर्वाग्रह वश मदुरा का उल्लेख न कर उसके स्थान पर उरगपुर (उरैयुर) का उल्लेख किया। इसके अतिरिक्त मदुरा का तमिल भाषा का 'अलवाय' या उरगपुर जैसा अप्रचलित नाम साहित्य या इतिहास में सामान्य रूप से उपलब्ध होता है, यह कहना कठिन है। अतः उरगपुर मदुरा से भिन्न किन्तु उरयुर (उरैयूर) से ही अभिन्न कहा जा सकता है जो 'त्रिचनापल्ली' जिले के अन्तर्गत विद्यमान है। यह ई0 प्रथम शती के पूर्व चोलों और पाण्ड्यों दोनों की राजधानी रह चुकी थी। इसे अमरगुरू उरैयुर भी कहा जाता था, जो उरगपुर का अपभ्रंश रुप है। प्राचीन उरगपुर (वर्तमान उरयूर) डॉ० मोतीचन्द्र के अनुसार[325] सातवीं शती में नष्ट हो गया था। यह 'त्रिचनापल्ली' का एक व्यापारिक भाग था तथा अपनी बढ़िया मलमल और पाक जलडमरूमध्य के मोतियों के लिए प्रसिद्ध था। कवि के

---

323 दि एनाल्स ऑफ भण्डारकर स्स्टीट्यूट II पृ0–63–68 दि पाण्डयाज ऐण्ड दि डेट ऑफ कालिदास

324 के0एस0 शंकर–दि एनाल्स ऑफ भण्डारकर इस्टीट्यूट 11–पृ0–189–99, पाण्डयाज ऐण्ड दि डेट ऑफ कालिदास।

325 डॉ० मोतीचन्द्र–सार्थवाह, पृ0–119, पटना, 1953 ।

समय में प्रतीत होता है, पाण्ड्य राज्य का प्रभुत्व, चोलों को पराभूत कर इस नगर पर पूर्णतः स्थापित हो चुका था।

अलका :–

महाकवि की अमरकृति मेघदूत के यक्ष से सम्बन्धित विपुल वैभवमयी कुबेर की इस राजनगरी का सुन्दर वर्णन मेघदूत[326] में प्राप्त होता है जिसके अनुसार ज्ञात होता है कि इनमें प्रधानता प्राचीन यक्ष जाति का निवास था (पू0 मेघ 7) साथ ही इसकी स्थिति गंगा के उदग्म और कैलाश से भी समीप ही व्यक्त होती है, क्योंकि कवि ने इसकी स्थिति की पहचान निर्दिष्ट करते हुए स्पष्ट रूप से इसे कैलाश की क्रोड मैं बैठी कामिनी की भाँति कहा है, जिसकी गंगा रूपी धवल साड़ी सरक चुकी हो।[327] पुराणों[328] में भी अलका में गंगा की एक धारा प्रवाहित होने का उल्लेख है। (स्कन्धपुराण केदारखण्ड 162/25) जो अलकनन्दा सम्भवतः गंगा के उद्गम स्रोत के रूप में पहले और उ0पू0 में था, जहाँ से कैलाश शृखंलाएं समीप विस्तृत होंगी और अलका की स्थिति उनसे भिन्न नहीं होंगी। इतनी ऊँचाई पर बड़ी शीत युक्त जलवायु में स्वाभाविक है, कि आन्तरिक स्थलीय भागों की भाँति विभिन्न ऋतुओं के क्रम के दर्शन नहीं होते होंगे, जैसा उ0 मे0–2, संकेत सभी ऋतुओं का है।

सामान्यतः अलका की स्थिति 'बद्रीनाथ' के समीप जहाँ से 'अलकनन्दा' (गंगा का उद्गम होता है) स्वीकार की गई है।

---

326 पूर्वमेघ (मेघदूत)–37, उ0मेघ–2 आदि।

327 तस्योत्संगे प्रणयन्ति इव स्त्रस्तगंगा दुकूलाम,
नत्वं दृष्टवा न पुनरलंका ज्ञास्यते कामचारिन।

328 स्कन्दपुराण, केदारखण्ड 162/15 – एकः प्रवाहो गंगाया अलकायां समागतः।

एस0जी0 काशवाला[329] ने मत्स्यपुराण के आधार पर इसकी स्थिति 12680 फीट की ऊँचाई पर भागीरथी एवं सतोपन्थ ग्लेशियर के समीप बद्रीनाथ के आगे वसुधारा प्रपात से लगभग दो मील पश्चिम में निर्धारित की है।

महाकवि कालिदास की अलका बहुत कुछ इसी के आस–पास स्थित रही होगी, जो हिम–आदि प्राकृतिक शक्तियों के प्रभाव से काल के गाल में समायी प्रतीत होती है।

औषधिप्रस्थ :–

हिमालय पर्वतीय प्रदेश की राजधानी के रूप में महाकवि ने इसका उल्लेख किया है।[330] जिसके अनुसार ज्ञात होता है कि 'औषधिप्रस्थ' अलका की अपेक्षा धन–वैभव एवं सौन्दर्य में कम नहीं था तथा गंगा की धारायें (उदग्म प्रदेशीय उसकी सहायक) इसमें चारों ओर से प्रवाहित थीं। मणियों के अतिरिक्त पहाड़ी जड़ी बूटियों विशेषरूप से औषधियाँ यहाँ प्रज्जवलित रहा करती थी, सम्भवतः इसी कारण इस प्राचीन पर्वतीय नगर का नाम औषधिप्रस्थ प्रसिद्ध था।(कुमार0 6/38 व प्रान्त ज्वलितौषधि) यक्ष–किन्नर आदि आदिम जातियाँ यहाँ वास करती थीं, तथा कवि के अनुसार यहाँ के सिंहों को जीतने वाले हाथियों एवं 'बिल–जाति' के घोड़ों का भी उल्लेख किया है।[331] नगर के आस–पास प्रायः मानसून भरे मेघ छाये रहते थे (कुमार0–6/40) कालिका पुराण के अनुसार[332] गंगा के उद्गम

---

329 एस0जी0 काशवाला–ज्योग्राफिकल ऐण्ड इथ्नीकल डाटा इन दि मत्स्य पुराण, पृ0–127–143 पुराना वा0 5 नं0–1, वाराणसी, 1963

330 कुमार सम्भव–6/33, 36, 37, 38, 39, 40, 42, से 47

331 कुमारसम्भव–6/39

332 कालिकापुराण–अध्याय 41, यंत्र गंगा निपतिता पुराब्रम्हपुरातसृता औषधिप्रस्थनगर

स्थान के समीप उसकी स्थिति व्यक्त होती है। डॉ० भगवतशरण उपाध्याय इसे काल्पनिक नगर मानते हैं[333] अतः प्रधान हिमालय की बद्रीनाथ–केदारनाथ शृंखलाओं में इसकी स्थिति होगी। जो आज अगोचर होने से इसे ठीक से निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता, किन्तु इसे काल्पनिक किसी रूप में नहीं किया जा सकता।

स्थादूरे सानुकत्तमा

333 उपाध्याय, डॉ० भगवतशरण; कालिदास का भारत पृ0–126, 2005, दिल्ली।